

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवचकों

की

शुभ नामावलि

—:०:—

१ +	श्रीमान् ला० महाश्रीरप्रसाद जी जैन वैकर्स, सदर मेरठ	१०००)
२ +	„ „ मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन, मु० नगर	१००८)
३ +	„ „ प्रेमचन्द श्यामप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी मेरठ	१००९)
४ +	„ „ मलैकचन्द लालचन्द जी जैन मुजफ्फरनगर	११००)
५	„ मेठ शीतलप्रसाद जी जैन, सदर मेरठ	१०००)
६ +	„ ला० कृष्णचन्द जी जैन रईस, देहरादून	११११)
७ +	„ „ दीपचन्द जी जैन रईस, देहरादून	१०००)
८ +	„ „ वारूमल प्रेमचन्द जी जैन रईस, मसुरी	११००)
९ +	„ „ सुपरीलाल बाबूराम जी जैन, ज्वालापुर	१०००)
१०	„ „ फेवलराम उपसेन जी जैन, जगाधरी	१०००)
११	„ „ जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन, शिमला	१०००)
१२	„ „ बलवारीलाल निरंजनलाल जी जैन शिमला	१०००)
१३ +	„ मेठ गैडालालसा दगड़मा जी जैन, खनावद	१०००)
१४	„ ला० बाबूराम अकलंकप्रसादजी जैन रईस, तिससा	१००१)
१५	„ „ सुकन्दलाल गुलशनराय जी जैन, नई मंढी, मुजफ्फरनगर	१००१)
१६	„ „ सुखवीरसिंह हेमचन्द जी जैन सर्राफ, बड़ौत	१००१)

नोट :—+ इस चिन्ह वाले सज्जनोका पूरा रुपया कार्यालयमें जमा है।

से ही निवृत्त हो जाऊँ । आपका उपदेश है,

“आत्वालसः श्रमं व्यर्थं नेत्रोन्मेष निमेषयोः ।

अथ मुग्धी स एवातः स्यां स्वस्मि स्वे सुखी स्वयम् ॥६॥

(अध्याय नं० ५)

अर्थात् जिसका उपयोग आत्मामें इतना स्थिर हो जाता है कि नेत्रके उठाड़ने व घन्ट करने तकके कार्यमें भी जो परिश्रम होता है वह व्यर्थ है, यह समझकर शरीरकी क्रियायोंमें भी आलसी हो जाता है अर्थात् फोर्ड भी क्रिया जो नहीं करना वही स्वयं स्थित-स्वस्थ है, और वह ही आत्मा सुखी होता है इसलिये मैं अपनेमें ही रहना हुआ अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊँ ।”

‘श्री महाजननन्द गीता’ विपत्तिमें हमारा सन्धा मित्र है । जिस समय हम दुःखमें व्याकुल होते हैं, पाप कर्मका उदय होता है, किसी प्रकार भी सुख और शान्तिही प्राप्ति नहीं होती तो ‘गीता’ का यह पाठ अमृतका कार्य करता है । घोरमें घोर विपत्ति आनेपर भी हम किम प्रकारमें उस विपत्तिको आकुलित न होते हुए महन कर सकने हैं इसका सीधा-सादा उपाय गीताकारने अध्याय नं० ७ श्लोक नं० २ में हमें बताया है कि सदैव मैं इस यातका ही विचार करूँ कि ये जो विपत्तियें मेरे उपर आ रही हैं ये सब मेरे ही पूर्वजन्म कर्मोंका फल है । अतः मुझे स्वयं समभावसे महन करना चाहिये । फोर्ड भी मुझे इस विपत्ति से छुटकारा दिलानेमें समर्थ नहीं है । इस अस्थिर जगत्में मेरा फोर्ड भी रहस्य अथवा शरण न हुआ, न है और न होगा । मैं मनु पदार्थ हूँ । अतः अनादिसे हूँ । इस भयसे पहले भी मैं था । यहाँपर भी किसी आत्माने मुझे शरणमें न रोना । इस भयमें भी मैं अनेक बार अमाध्य रोगोंसे पीड़ित हुआ परन्तु रूच भी कोई मेरे इस दुःखको घंट न मचा और न कम ही कर मचा । और फिर ये सारी तरंगें मेरा स्वभाव नहीं, न इन स्वरूप मैं हूँ मैं तो वैशालिक एकाकार अनन्तरूप

हृत्पतः अथ तो मैं परमेश्वर के भक्तों को दयाकर भगवान्
स्वर्ग निम्न प्रदत्त ही दृष्टि में मैं सुखी हो सकूँगा। किन्तु
अनेक उपाय हैं सुखी होने के। न पुण्य किमपि केना है और न कु
मिस्त्रीको देना है। परम भद्रा उपर्युक्त प्रकार हो जाये तो सुख है।

विपत्तिमें अधिक व्याकुल होनेका मुख्य कारण यह होता है कि
शरीरमें हमारा बहुत ही अनुराग है। शरीरको इतना सुविधा हमने
बना रखा है कि तनिक सी घेदना हम शरीरमें हुई कि हम परेशान हो
जाते हैं, रोने चिल्लाने लगते हैं। यह तो रही शारीरिक घेदना की
घात। जब हम किसी प्रकारकी घनदानि हो जायेंगे या इष्ट-वियोग
अथवा अनिष्ट-संयोग आदि हो जाता है तो हम मदान् दुःखी हो जाते
हैं जिगरा मूल कारण है कि हमने यह भद्रा बना रखी है कि हमें
अनुक दुःखी करता है, अमुक सुखी करता है और यदि अमुक इस
प्रकार ऐसा न करता तो हमारा भी ऐसा न होता। पूज्यश्री किस ढंगसे
उस दुःखी होनेके कारणको हटानेका उपाय बताते हैं देखनेकी चीज
है। आप कहते हैं—

“देहोऽस्तु वा न को लाभः का हानिर्मेतु शान्तिदा।

ज्ञानदृष्टिं मदा भूदात्स्या स्वस्मै रये सुखी स्वयम् ॥ ७ ॥ १८ ॥

अर्थात् देह हो उससे फटा लाभ है अथवा देह न हो उससे क्या हानि
है। परन्तु शान्ति देने वाली ज्ञानदृष्टि मेरे मदा ही हो जिससे मैं अपनेमें
अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊँ।” और यदि मुक्तिमें भी विचार करें तो
मालूम होगा कि यह शरीर ही सब अनर्थोंकी जड़ है, शरीरके कारण
ही भूख प्यास आदिकी घेदनायें होती हैं। इष्ट-अनिष्टकी कल्पना
भी तो शरीरके मंगलमें ही होती है। शरीर न रहे तब किसी प्रकार
की भी आपत्ति न रहे। शरीर रहित होनेपर ही तो भगवान् बनते हैं
अथवा मोक्षमें जा विराजते हैं। इस प्रकारका यह शरीर है, हममें

फिर ममत्व क्यों करें ? शरीरको हम अलग तो नहीं कर सकते परन्तु इनना तो किया ही जा सकता है कि उसमें ममत्व-मोह न करें। फिर शरीर रहे या न रहे कोई हानि नहीं। वेदलक्षानियोंके शरीर रहता है परन्तु नत-सम्बन्धी मोह राग न रहनेके कारण वह अनन्तसुखी रहने है। अब आप ही बतलाइये कि क्या हम प्रकारकी भ्रष्टा करने वाला आत्मा धीरे-धीरे शारीरिक वेदना उपस्थित होनेपर भी घबरा सकता है ? नहीं, कभी नहीं।

आने चलकर आप बतलाते हैं कि यह तो हमारा भ्रम मात्र है कि हमें असुर पदार्थ सुखी करता है और अमुक दुखी करता है। मैं तो स्वतन्त्र, एकाकी मयमे भिन्न हूँ। मय पदार्थ अपने अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें परिणमते हैं, एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ नहीं कर सकता, न कुछ उसमें ले सकता है, न कुछ उसे दे सकता है। चाहे कोई पदार्थ किसी रूप परिणामों मैं तो सदैव अपने ज्ञान-स्वभावमें ही लौन रहूँ यही सुखका उपाय है। इस प्रकार जब हमारी भ्रष्टा हो आयेगी फिर भी हम दुःखी रहे असम्भव सा प्रतीत होता है।

बानुतः अपनी और पूर्ण रूपमें लक्ष्य होनेपर ही मरचे आत्मीक सुखकी अवस्था प्रकट होती है। वर्तमानकी जितनी भी पर्यायें हैं वे सभी दुःख रूप ही हैं। उनसे छुटकारा पानेके लिये हमें अपने आत्म-स्वरूप या आत्मगुणोंकी पहिचान करनी होगी और उनकी प्राप्तिमें ही श्रयत्नशील होना पड़ेगा। इसी भावको निम्नलिखित श्लोकों द्वारा पूर्ण युक्तिके साथ प्रदर्शित किया गया है :—

श्लोक :—

पूर्णदृग्ज्ञानसत्सौख्यी मिद्धात्मा देशतोऽप्यहम् ।

परमेश्वर भवितुं शक्यः स्या स्वप्ने चैव सुखी स्वयम् ॥१॥

में रहित, स्वमे स्थित व समताका धारी ही वैरागी बनकर सुगम पात्र हो सकता है इसीका वर्णन आपको वैराग्य प्ररूपक, स्वास्थ्य प्ररूपक, साम्यप्ररूपक, व वैराग्यप्ररूपक, क्रमशः चौथे, पाँचवें, छठे व सातवें अध्यायमें मिलेगा। इतना कठिन विषय होते हुए भी आपने चुटकुलोंमें गहन तत्त्वका समझाया है और सुखका मार्ग बहुत ही सरल शब्दोंमें दिखाया है। यह कार्य इस प्रकार सम्पन्न होना आश्चर्यजनक है जैसा अनुभवी द्वारा ही सम्भव था।

आशा है हम आपके परिश्रममें पूर्ण लाभ उठावेंगे और सुखमय मार्ग जो इस ग्रन्थमें प्रतिपादित किया गया है उसका श्रद्धालु ज्ञान और अवलम्बन करके अपनेको सुखी बनावेंगे।

—मूलचन्द्र जैन
मुम्बईकरनगर



શ્રી અખ્યામયોગી, શાસ્ત્રમૂર્તિ, સિદ્ધાન્તન્યાયસાહિત્યશાસ્ત્રી, ન્યાયનીધિ
વૃત્તવર્ધી ૧૦૪ છુલ્લક મનોહરજી ઘર્ણી 'મહાજ્ઞાનન્દ' મહારાજ

पृ० श्री १०५ चुल्लक वर्णी मनोहर ज
'सद्गजानन्द' महाराज
की

जीवन-भांकी

"श्रीयुक्त मनोहर जो मनोहर ही है। यह बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति है। इसकी धारणा शक्ति बहुत ही बलम है। यह एक बार हीमे धारणा कर लेगा है ? हमसे पूछो तो यह निरुद्ध भव्य है इसका नाम तो परमेशी मन्त्र में लिया जावेगा।"

'गणेश वर्णी'

परमगुरु गुरुवर्य श्री प्रातः स्मरणीय, अभ्यात्मिकसंग विश्वद्वितीय, प्रशान्तमूर्ति, न्यायाचार्य, पूज्यपाद श्री १०५ चुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी महाराजके उक्त शब्द ही पर्याप्त हैं आपके जीवनका दिग्दर्शन करानेकेलिये, फिर भी भक्तिवश मैं कुछ लिखनेका असफल प्रयत्न कर रहा हूँ।

शिशु मदनमोहनः—

कार्तिक कृष्ण १० विक्रम सं० १९७२—आज जिला काँसी (रियासत ओरछा) के दमदमा ग्रामके इस छोटेसे घरमें यह दंपति कैसी ? यह रसमता क्यों ? मालूम हुआ कि आज पुत्र रत्नको जन्म दिया है। वसीका यह

अनन्तेश्वर मनाया जा रहा है। रिता भी मुलाकात भी नहीं कर पाई। बाराबार ही नहीं। बाबा बगैर प्रसन्नता से पूछते नहीं मनाते। मधीने मिलकर इस भीषणमूर्ति का नाम दिया 'मदन मोहन'।

बालक मगनलालः—

किन्हीको मन्द सुमधनसे, किन्हीको अपनी मुग्ध बाल बालसे, और किन्हीको तुलसी भाषासे रीति करवा हुआ बालक बढ़ने लगा। परन्तु देव—देवसे यह सब न देखा गया। ३ वर्ष का बालक—बीमार पड़ा—पेट का भयंकर रोग—बचने की कोई आशा नहीं। परिवारजनोंने बाबू के अश्वि रत्न रत्ने की आशसे बालक का अग्रिम नाम रखा 'मगनलाल' अर्थात् मांगा हुआ। पुण्यन शाय दिया। मगनलालके पेट की नमीपर गर्म ओटा रखा गया। वह पच गया। क्या पता था किन्हीको उस समय कि बालक मगनका यह नाम सार्थक ही सिद्ध होगा अर्थात् भविष्यमें वह सदा ही अपने आत्मावलोकनमें 'मगन' रहा करेगा। समययाक बालकमें खेलना परन्तु किन्ही बच्चे का दिल न दुख आय यह भावना सदा रहनी। मदैव पराजित बालक का पछ लेना—अर्थात् दूसरे बालक उस बच्चे की हंसी पढ़ाते।

विद्यार्थी मगनलालः—

अब कुछ आगे बढ़िये। मगनलाल ६ वर्ष के हुये। घरपर ही पढ़ना आरम्भ किया। ११ वर्ष तक घरपर ही विद्याभ्यास किया। पाठशाळा में बच्चों का पिटना देखकर घबराते थे। एक दिन पाठशाळा न जानेके अपराधमें आपकी माता जीने आपको पीटा। क्या विचारा आपने उस समय 'यदि मैं स्वर्गा

एक लुटिया हाथमें ले ली और एक कपड़ा (पीछीका भाग लानेके लिये) दूसरे हाथमें ले लिया। बहुत नीची निगाहसे, भूमिमें निरखते हुए (ईर्ष्या समितिसे), क्या मजाल कि आँख इधर-उधर उठ जायें, चले जा रहे हैं, बच्चोंको कह रहे हैं कि लो झुल्लक जा रहे हैं शान्त हो आबो। देखा आपने आपके उस समयके—एक छोटेसे बच्चेके हृदयको।

एक दिन और—सब बच्चे खेल रहे थे। सब मस्त थे। आप एक ओर एकान्तमें बैठे हुए थे। कुछ विचार चल रहे थे उस समय आपके हृदयमें। नरकोंका ध्यान आ गया। कितने दुःख हैं वहाँ, कोई कदाईमें तला जा रहा है, कोई काटा जा रहा है, कोई पीटा जा रहा है। उस अचानक नरकोंके दुःखोंसे मगभीत होकर आपके मुँहसे एक जोरकी चीख निकल पड़ी। बच्चे इधर-उधरसे दौड़े। पूछा 'क्या बात है' ? उत्तर दिया 'कुछ नहीं'। अब आप ही विचारिये कि जो व्यक्ति पचपनमें केवल नरकोंके दुःखोंका ध्यान करके इतना घबरा जाये कि उसके मुँहसे चीख निकल जाये, क्या वह व्यक्ति अपने जीवनमें कोई ऐसा कार्य कर सकता है कि जिसके फलस्वरूप नरक आदिकी यातनायें सदन करना पड़े ? "आपके शिलाकालके प्रधानाध्यापकजीके एकवार मुजफ्फरनगरमें—श्री महाराजजीकी ३५वीं जयन्तीके अवसरपर दर्शन हुये आप बड़े विद्वान् एवं शान्त सत्पुरुष हैं आपने अपने भाषणमें एक घटना सुनाई कि एक बार छात्रावस्थामें श्रीमनोहरजी जब शास्त्री कक्षामें थे अपने कमरेमें देहाती पुरुषके सरल चरित्रकी नकल कर रहे थे मैंने देखा और सोचा कि आजके पाठके समय इसे दुरु दैवेंगे, प्रमेयकमज्जमार्तण्डकी कक्षामें मैंने विद्वत्ता पूछना शुरू किया तो मैंने बहुत सूक्ष्मतासे अनेक विषय पूछे तब प्रत्येक प्रश्नका उत्तर पूरा पूरा मिठा मुझे जब कोई अवसर ही न मिल सका तो स्वयं शान्त होना पड़ा"। संगीतका विरोध शौक था। हारमोनियम

न्यायतीर्थ मनोहरलाल :—

बुद्धिके बड़े तीक्ष्ण थे। १७ वर्षकी अवस्थामें न्यायतीर्थ (मरफ़ी परीक्षा) में बचीरु हुए। इस छोटीसी वयमें विशाल ज्ञान प्राप्त करनेका कारण आपके ज्ञानावरण कर्मका सुयोपशम तो है ही परन्तु आपकी गुरु भक्ति भी बहुत अंशोंमें निमित्त कारण यनी। आपके गुरु पूज्य श्रीमहाशरीरोंके प्रति आपका ऐसा भक्तिपूर्ण व प्रेममय व्यवहार है कि अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता ?

पंडित मनोहरलाल :—

इसके बाद आपने संस्कृत विशालयमें संस्कृत अध्यापकका कार्य किया ? चाहे थोड़े समयके लिये पढ़ाने थे परन्तु पूरे तन मनसे। परीक्षा फल १० ग्रीस्दीसे अधिक रहता। पढ़ानेमें अब भी बहुत रुचि है। थोड़े समय हो हर समय बाल, वृद्ध, युवा थोड़े हो घर्म शिक्षा देनेमें ही मग्न रहते हैं। मुख्य कर्तव्य समझते हैं आप इसको।

मंत्री मनोहरलाल :—

सामाजिक क्षेत्रमें पैर रखा। १६ वर्षके थे। 'आति सुधारक समा' के मंत्री नियुक्त किये गये। गाँवके छोटे २ भगड़े आपके पास आते। बड़ी कुशलतासे बंनका फैमला करा देते। जनतामें इतना प्रभाव व विश्वास था कि कहा करते थे 'जो मनोहर कर देगा, स्वीकार है'। एक बार सतगुरुवा प्राममें एक वृद्ध—विवाह होने जा रहा था। आप साईकिलपर उस गाँवमें पहुँचे। उस होने वाले अनाचारकी रोका। जनता बहुत ही प्रभावित हुई। अब भी जहाँ जाते हैं समाजमें मनमुटावके दूर करनेका ही प्रयत्न करते रहते हैं।

श्री शिवरजी पहुँच कर आपने पूज्य गुरु श्री महावर्णीजीके समक्ष महारच्य व आचर्यके ग्रन्थ पारण किये ।

पूज्य श्री वर्णी जी :—

अब तो आप सब भ्रमोंसे मुक्त हो चुके थे । सुख और शान्तिकी प्राप्तिके हेतु ज्ञानार्जनमें जुट गये । पैराग्यता और बढ़ी । २ वर्ष बाद ही काशीमें सप्तम प्रतिमाके ग्रन्थ आदरे । तभीसे आपको श्री वर्णीजी कहने लगे ।

आपके पूज्य गुरुजी श्री पं० गणेशप्रसादजी वर्णी (वर्तमान पूज्य श्री १०५ हज्जक गणेशप्रसाद जी वर्णी) पैदल यात्रा करते २ सागर (सी० पी०) पधारे थे । सहारनपुरके कुछ व्यक्ति दशलक्षण पर्वमें पूज्य गुरुजीके दर्शनार्थ सागर गये । वहीं पर आपके दर्शनोंका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ और साथ ही साथ आपकी मधुर और मनोहर वाणी सुननेका भी । बहुत प्रभावित हुए । पूज्य गुरुजीसे आपके उत्तर प्रान्तमें भेजनेके लिये प्रार्थनाकी, प्रार्थना स्वीकृत हुई । उत्तरप्रान्तका अर्द्धभाग्य आप जून १६४५ को सहारनपुर पधारे । आपकी मधुरवाणीने सबका मन मोह लिया । संसारके दुस्वी प्राणी किम प्रकार दुस्वसे छूट जायें यही मदैव आपकी भावना रहती थी । दुस्वी प्राणियोंको धर्माभूत पिझानेकी एक तकफन थी आपके हृदयमें । इसी उद्देश्यसे आपके ही उपदेशसे प्रभावित होकर सहारनपुरमें उत्तरप्रान्तीय दिगम्बर जैन गुरुकुलकी स्थापना आपके ही कर-कर्मलों द्वारा हुई । अब यह गुरुकुल श्री हस्तिनागपुर तीर्थ क्षेत्र पर सुचारु रूपसे चल रहा है ।

इसके पश्चात् आपने जवलपुरमें आठवीं, फरवरी सन् १९४८ ई० में बरवासागरमें नवमी, और दिगम्बर मन —

१६४८ ई० में आगरा में दरम प्रतिमा अपने गुरु पूज्य महावर्णी जीके समक्ष ली।

शुद्धक वर्णीजी:—

परिणामोंके बढ़नेमें क्या देर लगती है? परिणाम और धैर्यमय हुये। आपको आहारके लिये लेजानेके लिये आचक्षेमें प्रायः प्रतिदिन बिम्बाद हो जाया करता था। कोई कहता था मैंने पहले कहा, कोई कहता था मैंने। सरल हृदय तो आप थे ही। आप किमीका चित्त दुःखाना नहीं चाहते थे। उक्त विवादके कारण ही बहुत ही छोटी भी ययमें विजय संवत् २००५ में सबके मना करने पर भी आपने श्री हस्तिनापुर तीर्थ क्षेत्र पर पूज्य गुरु महावर्णी जीके समक्ष भैक्ष्यवृत्ति का प्रत ग्रहण किया। अब आप शुद्धक वर्णीजीके नामसे प्रसिद्ध हुये।

सफल लेखक:—

आप प्रवीण व्यापी हो नहीं, वरन् वर्य कोटिके विद्वान और लेखक भी हैं। आपकी लेखन शैली अद्वितीय, मनोहर, सरल और हृदय तक पहुँचने वाली है। १४ वर्षोंकी अवस्थामें ही आपने 'शोक-शास्त्र' नामका ग्रन्थ संश्रुत भाषामें बनाया जिसमें रेलकी सवारी, रेल छूट आदिके ढंगका वर्णन था। २६॥ वर्षोंकी अवस्थामें 'मनोहर पद्यावलि' की रचना की जिससे पता चलता है कि आप काव्य व छन्द शास्त्रके भी सचकोटिके जानकार हैं। अब आपने गत २-२॥ वर्षोंमें तत्त्वदर्शक भाष्यात्मचर्चा तत्त्वसूत्र आदि अनेक ग्रन्थ रचे हैं। एक समस्थान सूत्र रचा जिसमें ११० अध्यायोंमें लगभग ४००० सूत्र हैं। धर्मकी विशेष जानकारीके लिये 'चौतीस ठाना' ग्रन्थका निर्माण किया

जिसमें आपके विशाल ज्ञानका दिग्दर्शन होता है। 'आत्म-सन्तोषन' जिसमें १०६३ कल्पनायें हैं इस बातको सिद्ध करनेमें पर्याप्त है कि आपके परिणामोंमें कितनी, संसार, शरीर, भोगोंसे विरागता भरी हुई है। एक २ कल्पना ऐसी है जिसको जीवनमें उतार कर सर्व साधारण अपना कल्याण कर सकता है। इस पुस्तकका तीसरा संस्करण अब आपके समक्ष है। जन साधारणको प्रारम्भिक धर्म-ज्ञानके हेतु आपने 'धर्म बोध' नामक पुस्तकी रचना की है जिसका दूसरा संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है। इन सबके अतिरिक्त आपने फरवरी सन् १९५१ में अपने गुरु जीके संगमें इरावासे फिरोजाबाद आते समय शिदार्थमें १५ दिनमें 'गीता' रची जिसमें ३७५ संस्कृत के श्लोक हैं। यह महान और सचकोटिका ग्रन्थ है। और अनेक ग्रन्थ आप लिख रहे हैं, जो कि हमें आशा है बहुत शीघ्र ही प्रकाशमें आयेंगे और सर्व साधारणके कल्याणमें निमित्त होंगे।

महजानन्दः—

'गीता' के प्रत्येक श्लोकके पीछे चरणमें महज आनन्दका वर्णन किया गया है। इसलिये आपका नाम सहजानन्द पड़ा। इसके अतिरिक्त अब आप प्रती-सम्मेलनमें भाग लेनेके लिये फरवरी सन् १९५१ ई० को फिरोजाबाद पहुँचे वहाँ आपके गुरु पूज्य श्री वर्णी जीने आपको परमानन्दके नामसे पुकारा। माथ हो यह बात भी 'जची' 'परम' की अपेक्षा स्वाभाविक अर्थात् 'सहज' अच्छा प्रतीत होता है। अतः आपको आपके महवासी "सहजानन्द" पुकारने लगे।

धर्मसंस्थाओंके संस्थापकः—

आप अपना कल्याण तो कर ही रहे हैं। परन्तु मोहान्धकारमें डूबे हुए संसारी प्राणियोंका कल्याण कैसे हो सदैव यही

विचारते रहते हैं। जहां भी जाते हैं यही उपदेश देते हैं कि अगर सुख और शांति प्राप्त करना है तो जीवनको धर्ममय बनाओ। सर्वसाधारण धर्मके विषयमें विलुप्त अन्धकारमें है। लक्ष्य मूलतः य कालेजकी शिक्षाकी ओर है और धार्मिक शिक्षाकी ओर भाव्य छटाकर भी नहीं देखने। परिणाम यह हो रहा है कि स्कूल और कालेजके विद्यार्थी धर्म नामकी वस्तुसे विलुप्त अपरिचित रहते हैं और दूषित वातावरणमें रहने वाले ये विद्यार्थी विषय भोगोंके गुलाम बनकर अपने जीवनको बरबाद कर देते हैं। व्यापारी वर्ग भी अर्थ संचय और विषय भोगोंमें इतने मंजुल रहते हैं कि जीवनका उद्देश्य क्या है इसको विलुप्त ही भूल जाते हैं। ऐसे ही विद्यार्थियों व व्यापारियोंका जीवन सुख और शांतिमय बनानेकेलिये आपने १० जनवरी सन् १९५१ ई० में मेरठ सदरमें धर्मशिक्षा मदनकी स्थापना की जहांपर आत्म-विद्यार्थीको सिखाया जाता है कि जिस धर्मकेद्वारा उसका जीवन सुख और शांतिमय बन सकता है वह धर्म है क्या ? अथ मेरठ सदरमें ही नहीं बल्कि मेरठ शहर, मुजफ्फरनगर, केराना, कांथला और शामलीमें भी धर्म शिक्षा मदन सुचारु रूपसे जन कल्याणका कार्य कर रहे हैं। आत्म विद्यार्थियोंका हत्साह बढ़ानेकेलिये आपने १० जूलाई सन् १९५१ ई०को मेरठ सदरमें उत्तरप्रान्तीय धर्मशिक्षापरिचालयकी स्थापना की जिसमें आत्मविद्यार्थियोंकी परीक्षाका बहुत ही उत्तम प्रबन्ध है। बालकों और व्यापारियों तक ही सीमित न रह कर आपने इस कार्यको आम जनता तक फैलाया। मिनम्बर सन् १९५१ ई० में मेरठ सदरमें श्री आचार्य धर्मशिक्षा मदनकी स्थापना की जिसका उद्देश्य महिलाओंके धर्मशिक्षा देना है। इन सबके अनिच्छित इस उत्तरप्रान्तमें जिसमें अभभावक विरोधमय होनेका मार्ग बंद हो रहा था

जैसे इस प्राम्ममें आते ही स्थापित कर दिया था वह है भी दि० लेन उत्तरप्रान्तीय गुरुकुल, इतिहासपुर।

यूँ तो जिमने भी आपका उद्देश्य गुना वमका ही कल्याण हुआ परन्तु जो साक्षात् आपके कारण पिछोंपर ये बात रहे हैं हैं सर्व श्री प्र० जीवानन्द जी, प्र० नित्यानन्द जी, (भूतपूर्व लेक्चरर व इंजिनियर रुइकी) श्रीप्र० अयानन्द जी, श्री विवेकानन्द जी, प्र० दयाराम जी, प्र० मयानन्द जी मैत्री व श्रीमान् पं शरणा राम जी आदि हैं। ये सब आपके मार्गमें रहकर स्वयंका भी कल्याण कर रहे हैं और सर्वसाधारणका मार्ग प्रदर्शन कर रहे हैं।

और क्या क्या:—

त्यागी भी बहुतमें होते हैं। विद्वानोंकी भी कमी नहीं है। परन्तु त्यागी होनेके साथ ही साथ सकलकोटिही विद्वान भी हो ऐसे बिले ही होते हैं। पूज्य शुक्लक भी यणी भी हैं जहाँमें से हैं। जिस समय पूज्य गुरुवर्य श्री १०५ शुक्लक गणेशप्रसाद जी यणी गेरठसे इटावाको प्रस्थान कर रहे थे इस समय आपके विषयमें जो शब्द उन्होंने कहे थे भूलेसे नहीं भुलाये जा सकते। उन्होंने उपस्थित अनन्तारो सम्बोधित करते हुए कहा था “मैं तुमको एक रत्न सौंपि जा रहा हूँ, भले प्रकार रक्षा करना इसकी। ऐसा त्यागी और ऐसा विद्वान तुमको कहीं न मिलेगा।”

आपकी प्रवचन शैलीकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। जिस समय आपके हृदयकी आवाज श्रोताओं तक पहुँचती है तो उनके हृद-तन्त्रीके तार मन्मत्ता छटते हैं और वह

(चौरह)

निम्नलिखित कुण्डलीसे आपके गुणोंका वर्णन विप्रण किया है।
पाठसेही जानकारीके लिये यह नीचे दिया जाना है।

पूज्य वर्णा ली महाराजकी जन्म कुण्डली

उ गुण		अ. प.
८	६	
८	६	६ म
८	६	६
८	६	६
१० रा	१२	२
११ गु		१

जन्म-कार्तिक कृष्ण ६ सोमवार रात्रिके पिञ्जने समय ५॥ बजे।
सुष कृष्ण, सूर्य नीच, मंगल नीच, शुक स्वमही। मिह राशि।

—संवित्तमें ग्रहोंका फल—

(१) सुष ज्ञानेश और राजेश होकर स्वयं क्षत्रमें कृष्णका
होकर बैठे हैं तथा किमो भी अन्य महकी शुभाशुभ दृष्टिसे रहित
है इसलिये आपकी शारीरिक प्रवृत्तियाँ लोकोत्तम रहेंगी।

(२) शनि विद्याभवनका मालिक है उसपर ज्ञानकारक गुरुकी
पूर्ण दृष्टि है तथा गुरुशानिका महान् शुभ योग नवमपंचम योग
हो रहा है इस योगमें जातक तार्किक एवं बुद्धिशाली होता है।

(३) श्री तथा गुण भवनका मालिक शुक्र बुद्धि के व्यव पत्र स्थानमें बैठे है तथा मंगल और शनि इन दो ग्रहोंकी वय या वयके स्थानपर दृष्टियां हैं । इस योगमें श्री न रहे ।

(४) शुक्र, गुरु इन दोनों शुभ ग्रहों तथा आचार्योंका शुभ भोग नवपंचम योग है इसलिये प्रत्येक बातको बुद्धिपूर्वक कभीटीपर कम लेना आतंकका स्वाभाविक गुण रहेगा ।

(५) चन्द्रगुणका समममक होनेसे विचारोंमें निर्मलता रहेगी ।

(६) राहु मंगलका ममसप्तक योग होनेसे तथा सूर्य मंगल जैसे क्रूर और नीचाग्र ग्रहोंका केन्द्र योग होनेसे आतंकके कभी कभी उद्भविजनता पैदा होनेके कारण बनते रहेंगे परन्तु वह अन्य बलवत् शुभ योगोंके कारण क्षणिक होंगे ।

(७) धार्य और धर्म भवनका मालिक शुक्र अपने घरको पूर्ण दृष्टिसे देखता है इसलिये इसमें न्यूनता नहीं आने देगा । परन्तु व्यपेक्ष सूर्यकी दृष्टि होनेसे निमग्न होनेका भावना होते हुए भी वह पद धारण कर सकेंगे ।

(८) विद्याभवनका मालिक शनि तथा माग्येश शुक्र इन दोनों परम मित्रोंका त्रिकोणेश होकर नवमपंचम योग हुआ है । इस योगमें ज्ञातक अपनी विद्याका पूर्ण उपयोग करता हुआ धर्ममें विरोध रुचि रखेगा यह योग इस पत्रिकामें बड़े महत्वका है ।

अन्तमें मेरी तो हार्दिक भावना है कि आपका स्वास्थ्य सदैव ठीक रहे जिससे आप स्वयंका भी कल्याण कर सकें और जन-साधारण भी आपके उपदेशोंको ग्रहण करके अपना जीवन सफल बना सकें ।

संवत् २०१० }

—मूलचन्द जैन
मुजफ्फरनगर ।

१। अ-२६।

संस्कृत, अ-२, ई-२६।

१२४ सु-२६। अ-२६। अ-२६। अ-२६।

महजानन्दगीता

अ-२६। अ-२६।

अ-२६। अ-२६।

१।

महजानन्दगीता अ-२६। अ-२६।

अ-२६। अ-२६। अ-२६। अ-२६।

अ-२६। अ-२६। अ-२६। अ-२६।

अ-२६। अ-२६। अ-२६। अ-२६।

अ-२६। अ-२६। अ-२६। अ-२६।

अ-२६। अ-२६। अ-२६। अ-२६।

अ-२६। अ-२६। अ-२६। अ-२६।

अ-२६। अ-२६। अ-२६। अ-२६।

अ-२६। अ-२६। अ-२६।

महाजानन्दगीता

(२)

मिद्वान्मनो रूपं तादृशं निजात्मनः ।
विलष्टस्तु संसारे-रूपां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥

क रूपं मिद्वान्मनः अस्मि शक्तिमः तादृक् रूपं निजात्मनः
तु संसारे धाग्न्या विलष्टः, अधुना अग्रान्तः सन सं
स्वयं मुखी स्वयम् ॥

स्वरूप मिद्वान्मनः है, शक्तिकी अपेक्षामें वैम
न निज आत्माका है, परन्तु संसारमें भ्रमसे क्लेश
प्राप्त हुआ, अब भ्रमरहित होता हुआ मैं अपने
ने लिये स्वयं मुखी होऊँ ॥

(३)

यतो भिन्न तद्भोऽपि कर्ता योगोपयोगयोः ।
दोषविधाताऽऽत्म-रूपां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥

निश्चयो भिन्नः पदः अपि अहं योगोपयोगयोः कर्ता च तद्भोऽपि
विधाता आत्मम्, अधुना अग्रान्तः सन स्वे स्वस्मै स्वयं मुखी
स्थाप ॥

मस्त पदार्थमें न्याया अकेला होनेपर भी मैं योग
अथवा आत्माके प्रदेश परिरूपन्द तथा उपयोगका कर्ता
और राग दोषका करने वाला हुआ । अब आन्ति रहित
होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं मुखी होऊँ ।

(४)

न करोमि न चाराणम् न कल्प्यामि किञ्चन ।

विरुद्धेन मुखा शम्भः-स्यां स्वर्म्मं म्ये गुग्गी स्वयम् ॥

अन्वय-अहं विरुद्धेन न करोमि न च न कल्प्यामि किञ्चनम् न क्ति
कल्प्यामि किन्तु मुखा शम्भः-स्यां स्वर्म्मं म्ये गुग्गी स्वयम् ॥

अर्थ-मैं न कुछ करना हूँ और न मैंने कुछ किया तथा :

कुछ करूँगा, परन्तु व्यर्थ विरुद्धमे दृष्टी हुआ हूँ, -
निर्विकल्प होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं गुग्गी
होऊँ ॥

(५)

स्वगगयेदनाविद्वद्वेष्टे स्वर्म्म्यं शान्तये ।

नोपहृत्वे च नो शान्तिः- स्यां स्वर्म्मं म्ये गुग्गी स्वयम् ॥

अन्वय-अहं स्वगगयेदनाविद्वद्वेष्टे सन् स्वर्म्म्यं शान्तये वेष्टे, न परान्
उपहृत्वे, च नो शान्तिः भवति, अधुना मदष्टिः सन् म्ये स्वर्म्मं
स्वयम् गुग्गी स्वयम् ॥

अर्थ-मैं अपने गगकी वेदनामे वेष्टा हुआ अपनी ही शान्ति
केलिये वेष्टा करता हूँ, न दूसरोंका उपकार करता हूँ
और न उमसे शान्ति होती है, -
होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्व

याति नतो न चायाति जातुचित्किञ्चिदन्मतः ।
खिन्नो हीनाधिकमन्यः...स्यां म्यर्म स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्य-न इतः जातुचित किञ्चिन् याति न च अन्यतः किञ्चि
आयाति, अहं हीनाधिकमन्यः वृथा खिन्नः अधुना सद्वर्त
मन् स्वे स्वर्मे म्ये सुखी स्वयम् ।

अर्थ-न यहांसे (निज आत्मामें) कभी कुछ जाता है और
अन्य पदार्थमें कुछ आता है, मैं अपनेको कम
अधिक मानता हुआ व्यर्थ खिन्न हुआ हूं, अब मैं
दृष्टि वाला होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स
सुखी होऊँ ॥

म्यातन्मयं वस्तुनो रूपं तत्र कः किं कल्पयति ।
हानिर्मे हि विहङ्गेषु म्यां म्यर्म स्वे सुखी म्ययम् ॥

अन्य-वस्तुनः म्यातन्मयं वस्तुनः रूपं अग्नि, तत्र कः किं कल्पयति
हि विहङ्गेषु मे हानि , अधुना म्यातन्मयदृष्टिः मन् स्वे म्य
म्यं सुखी स्वयम् ॥

अर्थ-वस्तुही म्यातन्मयता वस्तुता मारूप है उस स्वरूपमें
क्या करेगा ? निधरमें विहङ्गोंके कारणही मेरी हानि
अब म्यातन्मयदृष्टिमाना होता हुआ मैं अपनेमें
मिथं म्यं सुखी होऊँ ॥

(८)

घ्राता दृष्टाहमेकोऽग्नि निर्विकारो निरञ्जनः ।

नित्यः सन्त्यः समाधिस्थः...स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अहं घ्राता दृष्टा एकः अग्नि, निर्विकारः निरञ्जनः अग्नि नित्यः सन्त्यः समाधिस्थः अग्नि, अतः स्यात् समाधिस्थः सल स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मैं जाननेवाला व देखनेवाला हूँ, अरुनेना हूँ, विकार रहित व मलरहित हूँ, अविनाशी फैलती मरामें होने वाला भाग्य अस्थामें स्थित हूँ, श्मलिये समता पणिमामें उह कर मैं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(९)

अमगोऽहमजन्माहं निःशरीरो निरामयः ।

निर्ममो नैर्जगत्योऽहं...स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अहं अमरः अजन्मा अग्नि, निःशरीरः निरामयः अग्नि, अहं निर्ममः नैर्जगत्यः अग्नि, अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मैं अमर हूँ, अजन्मा हूँ, शरीर रहित व रोगरहित हूँ, जिसका जगतमें कुछ नहीं है ऐसा, तथा जो जगतका कुछ नहीं है ऐसा मैं हूँ, श्मलिये मैं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(१०)

नोपद्रवो न मे द्वन्द्वो निर्विकल्पोऽपरिग्रहः ।

दृश्यः कैवल्यदृष्ट्याऽहं...स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।

अन्यथ—मैं उपद्रवः न आस्ति, द्वन्द्वः न आस्ति अहं निर्विकल्पः

अर्थात्पिहः अस्मि, कैवल्यदृष्ट्या अहं दृश्यः । अस्मि

कैवल्यदृष्ट्या स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मेरे उपद्रव नहीं हैं, द्वन्द्व नहीं है, मैं विकल्प रीति

परिग्रह रहित हूँ, केवल अकेलैकी दृष्टिसे मैं प्र

के योग्य हूँ, इसलिये केवल अकेलैकी दृष्टि

अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(११)

निर्वंशश्चेतनावंशो निर्गृहश्चेतनागृहः ।

चेतनान्यत्र मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।

अन्यथ—अहं निर्वंशः चेतनावंशः अस्मि, निर्गृहः चेतनागृहः

चेतनाऽन्यत्र किञ्चित् न आस्ति, ततः स्वे स्वस्मै स्वयं

स्याम् ॥

अर्थ—मैं वंश रहित हूँ, तथा चेतना ही त्रिमया देश है

मैं घर रहित हूँ, तथा चेतना ही त्रिमया घर है

हूँ । मेरा चेतनामें अतिशक्ति कुछ भी नहीं

निये अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

अप्ययं च न निवे

आप मुन्नी

(१४)

निष्क्रीतिरचेतनाकीर्तिनिष्कृतिरचेतनाकृतिः ।

चेतनान्यन्न मे किञ्चिन् ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यय—अहं निष्क्रीतिः चेतनाकीर्तिः अस्मि, निष्कृतिः चेतनाकृतिः अस्मि
मे चेतनान्यत् किञ्चिन् न अस्ति, अतः चैतन्यं चेतमातः स्वे
स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ—मैं कीर्ति रहित हूँ व चेतना ही हूँ कीर्ति जिसकी ऐसा है,
और कृतिरहित हूँ, व चेतना ही जिसकी कृति है ऐसा है,
मेरा चेतनासे अन्य कुछ भी नहीं है, अतः चैतन्यभावकी
ही चेतता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये अपनेआप सुखी
होऊँ ॥

(१५)

जीविताशा प्रतिष्ठाशा विपयाशा जनैपणा ।

अभिर्मुग्धो विनष्टोऽहं ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यय—जीविताशा, प्रतिष्ठाशा, विपयाशा, जनैपणा आभिः मुग्धः आ
विनष्टः, अधुना ताभ्यः निवृत्त्य स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ—जीनेकी आशा यश प्रतिष्ठाकी आशा विषय प्राप्तिकी आशा
लोक अच्छा कहें इस प्रकारकी आशा, इनसे मोहित हुआ
मैं विनष्ट हुआ अब उनसे निवृत्त होकर मैं अपनेमें अप
लिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२०)

अहंकारहिना दष्टः कर्ता भोक्ता भवेत् मे ।

ममत्वाहंत्वभावोऽपि ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्

प्रत्यय-अहंकारहिना दष्टः अर्थ जीवः कर्ता भोक्ता भवेत् किन्तु मे ममत्वाहंत्वभावः अपि न अस्ति, अतः अहंकारत्वं त्यक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

पर्य-अहंकाररूपी सर्पसे डसा हुआ यह जीव कर्ता भोक्ता होता है । किन्तु मेरे तो ममत्व और अहंत्व भाव भी नहीं है, इसलिये अहंकारपनेको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२१)

वाञ्छन् गृह्णन् त्यजन् हर्षन् शोचन् कुप्यन्न वर्तते ।

यत्रास्ते तत्स्वसाम्राज्यं ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

प्रत्यय-यः भावः वाञ्छन् गृह्णन् त्यजन् हर्षन् शोचन् कुप्यन् न वर्तते, च यत्र आस्ते तत्स्वसाम्राज्यं अस्ति तस्मिन् ज्ञायकभावमात्रे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

पर्य-जो भाव वाञ्छा करताहुआ ग्रहण करता हुआ त्याग करता हुआ हर्ष करता हुआ शोक करता हुआ क्रोध करता हुआ नहीं रहता है, और जिस स्वभावमें ठहरता है, वह आत्मा का साम्राज्य है, उस ज्ञायकभावमात्र अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१८)

ज्ञात्वा रागफलं दुःखं जीवानां भ्रमतामिह ।

रागं मुञ्चानि नो ? मुक्त्वा ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-इह भ्रमतां जीवानां दुःख रागफलं ज्ञात्वा किं अहं रागं मुञ्चानि ? मोक्षयामि एव तु रागं मुक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयम् सुखी स्याम् ॥

अर्थ-इस लोभमें भ्रमण करने वाले जीवोंके दुःखको रागका जानकर क्या मैं रागको नहीं छोड़ूँ ? नियमसे छोड़ दूँ, तब रागको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने सुखी होऊँ ॥

(१९)

द्रष्टारं स्वयमात्मानं परय परय न चैतरम् ।

निष्ठानि निर्विशेषं चेत् ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-त्वं स्वयं आत्मानं द्रष्टारं परय, इतरं द्रष्टारं न परय, यस्मात् आत्मा एव द्रष्टा तस्मात् यदि अहं निर्विशेषं तिष्ठानि चेत् स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-तुम स्वयं अपने आपको द्रष्टा देखो, मानो, अन्य किसीको द्रष्टा-देखनेवाला मत देखो, जिस कारण आत्मा ही द्रष्टा है उस कारण यदि मैं विशेष रहित = विकल्प रहित दृष्टा रहूँ तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२०)

अहंकाराहिना दष्टः कर्ता भोक्ता भोक्ता मे ।

ममत्वाहंत्वभावोऽपि ... स्यां स्वयं से सुखी स्वयम्

अर्थ-अहंकाराहिना दष्टः अर्थात् जो कर्ता भोक्ता भोक्ता मे ममत्वाहंत्वभावः अर्थात् ममत्त्व अहंत्व अहंकाराहंत्वभावः अर्थात् अहंकाराहंत्वभावः अर्थात् अहंकाराहंत्वभावः

अर्थ-अहंकाररूपी सर्पसे इसा हुआ यह जो कर्ता भोक्ता होता है । किन्तु मेरे तो मनस् और अहंत्व भाव भी नहीं है, इसलिये अहंकारपनेको छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२१)

वाञ्छन् गृह्णन् त्यजन् हर्षं शोचन् कुप्यन् वर्तते ।
यत्रास्ते तत्स्वसाम्राज्यं ... स्यां स्वयं से सुखी स्वयम् ॥

अर्थ-यः भावः वाञ्छन् गृह्णन् त्यजन् हर्षं शोचन् कुप्यन् न वर्तते, यत्रास्ते तत्स्वसाम्राज्यं अर्थात् अहंकाराहंत्वभावः अर्थात् अहंकाराहंत्वभावः अर्थात् अहंकाराहंत्वभावः

अर्थ-जो भाव वाञ्छा करे, गृह्णन् करता हुआ हर्ष करता हुआ नहीं रहता है, शोचन् करता हुआ क्रोध करता हुआ सा साम्राज्य है, अर्थात् अहंकाराहंत्वभावः अर्थात् अहंकाराहंत्वभावः अर्थात् अहंकाराहंत्वभावः

(२०)

यदाऽज्ञता तदागीन्मे प्रीतिमोगं स्वविभ्रमान् ।

दीनवज्जोपि धावानि ? ... म्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ।

अन्वय-यदा मैं अज्ञता आगीन् तदा भोगं स्वविभ्रमान् में प्रीति
आसीन अथ हः अपि अहं दीनवज्जोपि किं पतिः धावानि ? अ
तु स्वे स्वस्मै स्वयं मुखी स्याम ॥

अर्थ-जिस समय मेरे अज्ञानका असन् भाव था तब भीगे
आत्माका या आत्मीयताका भ्रम होनेमें मेरी प्रीति तु
अब ज्ञानस्वभाव होकर भी-मैं दीन अर्थात् भ्रमी जीतों
तरह क्या आत्माके उपयोगसे बाहर परपदार्थमें दौड़ूँ ?
मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप स्वयं मुखी हूँ ॥

(२३)

ज्ञातृत्वं मयि सर्वेषु स्वायत्तं साम्यसंयुतम् ।

कस्य कः ज्ञातृतां दृष्ट्वा...स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥

अन्वय-म्यायत्तं साम्यसंयुतम् ज्ञातृत्वं मयि च सर्वेषु विद्यते, क
कः अस्ति, ज्ञातृतां दृष्ट्वा अहं स्वे स्वस्मै स्वयं मुखी स्याम ॥

अर्थ-अपने ही आधीन समतासे संयुक्त ज्ञातापन मुझमें
मनोंमें विद्यमान है, किमका कौन है, इसलिये ज्ञाता
का देखकर मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं मुखी हूँ ॥

आत्मजागरणं यत्र आभावे लोकजागृतिः ।

अहं स ज्ञानमात्रोऽस्मि म्यां स्वमै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यत्र सति आत्मजागरणं भवति च आभावे लोकजागृतिः भवति
स ज्ञानमात्रः अहं अस्मि तस्मिन् स्वे स्वमै स्वयं सुखी स्वयम् ॥

अर्थ-जिसके होनेपर आत्मजागरण होता है और अभाव होते
पर लोक व्यवहारमें जागरण होता है वह ज्ञानमात्र में है,
सो अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(३१)

अहं मयं जन्ममृत्यादि सुखं दुःखं नयाम्यहम् ।

मुक्तो नेता गुरुस्तस्मान्...स्यां स्वमै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अहं मयं जन्ममृत्यादि सुखं दुःखं नयामि च मुक्तो नेता अस्मि
अहं अस्मि, तस्मान् अहं अस्मिन् स्वे स्वमै स्वयं सुखी स्वयम् ॥

अर्थ-मैं अपनेको जन्म मरण आदि सुख दुःखको प्राप्त
करता हूँ और मुक्ति में ले जानेवाला भी मैं हूँ, इस
कारण मैं ही अपना गुरु हूँ सो अब अपनेमें अपनेलिये
स्वयं सुखी होऊँ ॥

(३४)

देहे स्वयोधता दुःखं सुखं च स्वस्य चेतनम् ।

सुखं स्वायत्तमेवातः स्यात् स्वस्मै च सुखी स्वयम्

अन्वय-देहे स्वयोधता दुःखम्, स्वे स्वस्य चेतनं सुखं समाप्तं च न
सुखं स्वायत्तं एव अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-शरीरमें अहंबुद्धि होना दुःख है, आत्मामें आपका अनुभव
होना सुख है, और यह सुख निजके ही आधीन है
इमलिये मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३५)

निर्यङ्नागर्क्षदेवानां देहे निष्ठन् पृथक् तथा ।

नृदेहेऽपि नरो नाहं... स्यात् स्वस्मै च सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यथा निर्यङ्नागर्क्षदेवानां देहे निष्ठन् आत्मा पृथक् तथा
अपि निष्ठन् अहं नरः न, अतः स्वं पृथक्कृत्य स्वे स्वस्मै
सुखी स्याम् ॥

अर्थ-जैसे निर्यक्ष, नागर्क्ष, देवोंके शरीरमें रहता हुआ
शरीरमें भिन्न है उसी प्रकार मनुष्यशरीरमें भी
हुआ मैं मनुष्य नहीं हूँ, इमलिये इस पृथक् शरीरमें
का भिन्न कण्ठे मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ

(३१)

आमन्त्रादन्त्रेण दुःखं हृः । अन्त्रेण गुणपूर्तिः ।

यं अन्त्रिणः अन्त्रे अन्त्रे अन्त्रे अन्त्रे अन्त्रे अन्त्रे ॥

आमन्त्र-आमन्त्र आमन्त्रेण दुःखं हृः अन्त्रेण गुणपूर्तिः ।
अन्त्रेण, अन्त्रे अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रे अन्त्रे अन्त्रे अन्त्रे अन्त्रे ॥

अर्थ-आमन्त्र आमन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण दुःखं हृः ई निम्न आमा निम्न
अन्त्रेण गुणपूर्तिः हृः ई, अन्त्रे निम्नरहितं निम्नरहितं माप
अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण
आमन्त्रेण अन्त्रेण ॥

(३०)

आमन्त्रादन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण मा गतिः ।

अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण ॥

[आमन्त्र-आमन्त्र आमन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण मा गतिः मा आमा
अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण ॥

अर्थ-अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण
अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण
अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण अन्त्रेण ॥

(३८)

यत्र चित्तस्य न क्षोभः स्ये वक्रान्ते वगान्यदम् ।

जनव्यूहे हितं किं मे स्या स्वस्मै स्ये मुखो म्ययम् ॥

अन्वय—जनव्यूह में कि. हित ? ततः यत्र चित्तस्य क्षोभः न भवेत् अ
स्ये स्वस्मै स्ययं मुखो स्याम् ॥

अर्थ—जनममूहमें मेरा क्या हित है ? इसलिये जहाँ चित्त
क्षोभ न होवे ऐसी निज आत्मामें अथवा एकान्तमें मैं
और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३९)

हितैषी हितयन्ताऽस्मि हितजाऽस्माद्गुरुः ।

अस्मैव साक्षितायां शं ... स्यां स्वस्मै स्ये मुखो म्ययम् ॥

अन्वय—हितैषी हितज्ञ हितयन्ता अहं अस्मि अस्मान् स्वस्य गुरुः तस्मात्
अहं एव यिंशे अस्य एव साक्षितायां शं वर्तते अतः स्ये स्वस्मै
स्ययं मुखो स्याम् ॥

अर्थ—हितका चाहनेवाला हितका जाननेवाला हितरूप वर्तनेमें
लगानेवाला मैं हूँ, इस कारण स्वका गुरु वास्तवमें मैं ही हूँ
इसको ध्यानशायामें मैं सुखी हूँ, इसलिये मैं अपनेमें अपने
लिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४८)

ज्ञानं मयैव जानानि तदा मयैवामिता वृतः ।

अहमहं तदुद्दिः मन ... मया मयैव मये मुखी मयम् ॥

अ वद-ज्ञानं मय एव जानानि तदा मयैवामिता वृत भवेत् अतः
अहं तदुद्दिः मन अहं मये मयैव मय मुखी मयम् ॥

अर्थ-ज्ञान मयको ही जानता है तब यह मय है यह मयको है
इस तरहकी बात कहाने हो, इसलिये एक निज अहं-
वृद्धि होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये मय मुखी होऊँ ॥

(४९)

शक्तिमात्रदशायां न दुःखं मयान्कर्मनिर्जरा ।

मयोऽहं शक्तिमात्रोऽनः मया मयैव मये मुखी मयम् ॥

अन्य-शक्तिमात्रदशायां दुःखं न मया कर्मनिर्जरा भवति म शक्तिमात्रः
मय अहं अति अतः मये मयैव मय मुखी मयम् ॥

अर्थ-जाननेमात्रकी दशामें दुःख नहीं है, कर्मोंकी निर्जरा
होती है यह शक्तिमात्र यह मैं हूँ । मैं अपनेमें अपनेलिये
मय मुखी होऊँ ॥

(४०)

यदुपासं तदाप्तिः स्यादतः शुद्धात्मतां भजं ।

शुद्धाप्तिः शान्तिसम्पत्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यथ-अहं यत्-उपासै तदाप्तिः स्यात् अतः शुद्ध त्मतां भजं
शुद्धाप्तिः शान्तिसम्पत्तिः ततः स्वे स्वरमे स्वयं सुखी स्याम्

अर्थ-मैं जिसकी उपासना करूँ, उसकी प्राप्ति होती इसलि
मैं शुद्धात्माको ही भजूँ क्योंकि शुद्ध आत्मभावकी प्रा

और शान्तिरूप सम्पत्ति एकही बात है सो शुद्ध स्वरू
वाले अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४३)

संयम्याक्षाणि मुक्त्वा च कल्पनां मोहसम्भवाम् ।

अन्तरात्मस्थितः क्षान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यथ-अक्षाणि संयम्य च मोहसंभवाम् कल्पनां मुक्त्वा क्षान्तः
अन्तरात्मस्थितः सन् स्वे स्वरमे स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-इन्द्रियोको संयमित करके और मोहसे उत्पन्न होनेवाली
कल्पनाको छोड़ करके क्षमाशील अन्तरात्मामें स्थित
होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी
होऊँ ॥

(४८)

स्वैकत्वस्य रुचिस्तस्माद्भव्यता निश्चयेन मे ।

अस्यभावे कथं वृत्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यय-मे स्वैकत्वस्य रुचिः संवर्तते तस्मात् निश्चयेन मे भव्यता आस्त
पुनः अस्यभावे कथं वृत्तः अहं तु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मेरे तो निजके एकत्वमें रुचि है इसलिये निश्चयसे मेरे
भव्यपना [तथा ही होनहार] है फिर ऐसी प्रवृत्तिमें जो
मेरा स्वभाव नहीं कैसे लगा, मैं तो अब अपनेमें अपनेलिये
स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४९)

अद्वैतानुभवः सिद्धिर्द्वैतबुद्धिरमिद्धता ।

सिद्धेरन्यथ पन्था न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यय-अद्वैतानुभवः सिद्धिः द्वैतबुद्धिः अमिद्धता, सिद्धेः अन्यः पन्था
न अतः अद्वैते स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-निज अद्वैतका अनुभव तथा अद्वैत परिणामन ही सिद्धि
है, द्वैतबुद्धि असिद्धि है । सिद्धिका और दूसरा कोईभी
मार्ग नहीं है, अतः निज अद्वैत स्वरूप अपनेमें अपनेलिये
स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४६)

सदृष्टिज्ञानचारित्रैक्यं मुक्तिरदः सुखम् ।

तच्च ज्ञानमयं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-सदृष्टिज्ञानचारित्रैक्य मुक्ति अस्ति, अदः सुखं च
ज्ञानमयं तस्मान् ज्ञानमये स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रिका एकपना

है यह ही मत्त सुख है और वह एकत्र ज्ञानमय है
ज्ञानस्वरूप अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४७)

तत्त्वतो ज्ञानमात्रोऽहं क्व विकल्पावकाशता ।

ततोऽहं निर्विकल्पः मनः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-तत्त्वतः अहं ज्ञानमात्रः अस्मि तत्र विकल्पावकाशता क्व
ततः निर्विकल्पः मनः अहं स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-वास्तवमें मैं ज्ञानमात्र हूँ उस मुझमें विकल्पोंका
ही कहां है इसलिये अब निर्विकल्प होता हुआ मैं
अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४८)

स्वैक्यस्य शक्तिरन्त्यात्मव्यपता निरूपयेन मे ।

अध्यासाय कथं वृत्तः स्यात् स्वप्नं स्ये मुखी स्वप्नम् ॥

अर्थ-मेरे स्वैक्यस्य शक्तिः सर्वत्र तन्मात्र निरूपयेन मे । अध्यासाय कथं वृत्तः स्यात् स्वप्नं स्ये मुखी स्वप्नम् ॥

अर्थ-मेरे तो निजस्वैक्यमे शक्ति है इसलिये निरूपण मेरे
व्यपना [तथा ही दोनहात] है फिर ऐसी प्रवृत्ति मे जो
मेरा स्वभाव नहीं है, मेरा सगा, मैं तो अब अपनेमे अपनेलिये
स्वयं मुखी होऊँ ॥

(४९)

अद्वैतानुमयः मिद्वैततत्त्वमिद्वैतता ।

मिद्वैतन्यय पन्था न स्यात् स्वप्नं स्ये मुखी स्वप्नम् ॥

अर्थ-अद्वैतानुमयः मिद्वैतः द्वैततत्त्वमिद्वैतता, मिद्वैतः अर्थः पन्था
न स्यात् स्वप्नं स्ये मुखी स्वप्नम् ॥

अर्थ-निज अद्वैतका अनुमय तथा अद्वैत परिश्रमन ही मिद्वैत
है, द्वैततत्त्वमिद्वैत है । मिद्वैतका और दूसरा कोईभी
मार्ग नहीं है, अतः निज अद्वैत स्वरूप अपनेमे आ
स्वयं मुखी होऊँ ॥

(४०)

स्वैकत्वं मंगलं लोके उत्तमं शृङ्गं महत् ।
रक्षादुर्गं तदेवास्मि...स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥

अन्वय-स्वैकत्वं मंगलं, लोके उत्तमं, महत् शरणं पतंते, तन् एव रक्षा-
दुर्गं अस्ति, अतः स्वैकत्वमये स्वे स्वस्मै स्वयं मुखी स्याम् ॥

अर्थ-स्व का एकपन ही मंगल है लोकमें उत्तम है, महान्
शरण स्वरूप है, वह ही रक्षा का किला है। इसलिए
स्वके एकत्व स्वरूप अपनेमें अपनेलिये अपने आप मुखी
होऊँ ॥

(४१)

स्वैकत्वमौषधं सर्वक्लेशनाशनदक्षकम् ।

चिन्तामणिस्तदेवास्मिन् स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥

अन्वय-स्वैकत्व सर्वक्लेशनाशनदक्षकम् औषधमस्ति, तन् एव चिन्ता-
मणिः अस्ति, अतः स्वैकत्वमये अस्मिन् स्वे स्वस्मै स्वयं मुखी
स्याम् ॥

अर्थ-स्व का एकपन सर्व क्लेशोंके नाश करनेमें दक्ष औषध
... है वह स्वैकत्व ही चिन्तामणि है इस लिये स्वके एकपन
स्वरूप इस निज आत्मा में अपनेमें अपनेलिये स्व
मुखी होऊँ ॥

(५२)

ज्ञायकत्वे विकारः-क रागादेः सन्निधावपि ।

सोऽहं ज्ञायकमात्रोऽस्मि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-रागादेः सन्निधौ अपि ज्ञायकत्वे विकारः क्व अस्ति, स ज्ञायक-
मात्रः अहम् अस्मि, तस्मिन् ज्ञायके स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी
स्याम् ॥

अर्थ-राग आदिकी निकटता होनेपर भी ज्ञायक स्वरूपमें
विकार कहाँ है ? वह ज्ञायकमात्र मैं हूँ सो उस ज्ञायक
निज आत्मामें अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(५३)

दुःखी किं ? विवशः किं ? मेऽत्रैव न्यायो विधिर्जगत् ।

सुखागारोऽप्ययं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-हे आत्मन् ! दुःखी किं ? विवशः किं ? मे अत्र एव न्यायः अत्र
एव विधिः अत्र एव जगत् अस्ति, सुखागारः अपि अय एव अहं
तस्मात् सुखस्वरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-हे आत्मन् ! दुःखी क्यों ? विवश क्यों ? मेरा तो इस
मुझही आत्मामें न्याय है यहां ही विधि विधान है यहां
ही मेरी दुनियां है सुखका आगार भी यह ही मैं हूँ
इसलिये सुख स्वरूप अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ

(५४)

ज्ञानपिण्डोऽन्यभिन्नोऽहं निर्विकारी स्वभावतः ।

स्वतन्त्रः सहजानन्दः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यय-अहं ज्ञानपिण्डः अन्यभिन्नः स्वभावतः निर्विकारी सहजानन्दः

अस्मि अतः स्वतन्त्रः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मैं ज्ञानका पिण्ड अन्यसे भिन्न स्वभावसे विकार रहित

स्वाभाविक आनन्दमय हूँ इसलिये स्वके ही आश्रित हूँ

हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(५५)

निजचेष्टाफलं क्षण्यं दृष्टिः संसार उच्यते ।

विज्ञाय तत्त्वतस्तत्त्वं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यय-हि निजचेष्टाफलं क्षण्यं अस्ति इति दृष्टिः संसारः उच्यते, अ

तत्त्वं विज्ञाय स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-निरचयसे "अपनी चेष्टाका फल अन्य पदार्थमें है

इस दृष्टिको ही संसार फटा जाता है, अतः वास्तव

मन्त्रको जानकर मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ

(१०)

गंगादि पोटपेनावसापिष्टो ज्ञानगागरे ।

अनो ज्ञानेऽवगाढार्द...भ्यां स्वर्म्मे स्वे गुप्ती स्वयम् ॥

अन्वय-गंगादि साधनं पोटपेनं साधनं ज्ञानगागरे न आविष्टः अतः
ज्ञाने अवगाढं अर्दं स्वे भ्यां स्वर्म्मे स्वयं गुप्ती स्वयम् ॥

अर्थ-गङ्गा आदि विभाय तत्रतः पोटं कर्त्तुं जपनरुः ज्ञानरूप
गुप्तमे प्रविष्टं नही दृष्ट्वा इतलिये ज्ञानमे प्रवेश पत्रके मे
अपनेमे अपनेलिये अपने आप गुप्ती होऊं ॥

(११)

स्वभावः मिद्वर्तते तु पर्यायाः कर्मविक्रमाः ।

न्यहं स्वविक्रमं कुर्यां भ्यां स्वर्म्मे स्वे गुप्ती स्वयम् ॥

अन्वय-मिद्वता स्वभावः तु एते पर्यायाः कर्मविक्रमाः मति अहं तु
स्वविक्रमं कुर्याम अ स्वे स्वर्म्मे स्वयं गुप्ती स्वयम् ॥

अर्थ-अपने गुणोक्ती प्राप्ति रूप मिद्वता स्वभाव है परन्तु ये
पर्याये कर्मके विक्रम हैं, मैं तो स्वका विक्रम-पुरुषार्थ करूँ
और अपनेमे अपनेलिये स्वयं गुप्ती होऊँ ॥

“ समामोऽयम् प्रथमोऽध्यायः ”

। इति श्री महेश्वरात्मयोगिना ज्ञानतृप्तिना श्यायनीर्षेण मिद्वान्त-
श्यायमाहित्य शास्त्रिणा पूषधी १०५ सुस्तकमनोहरवर्णिना महजानन्-
श्यामिना विरचितायां महजानन्दगीतायामात्मरत्नविष्णुति
प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

(४८)

पूर्णदृष्टानमर्माख्यो सिद्धात्मा देशतोऽप्यहम् ।

पूर्णश्च भवितुं शक्यः ... स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।

अन्यथ-सिद्धात्मा पूर्णदृष्टानमर्माख्यो अहं अवि देशतः दृष्टान-
ख्यो च पूर्णः भवितुं शक्यः अतः स्वं स्वरमे स्वयं सुखी स
अर्थ-सिद्धात्मा पूर्णदर्शन ज्ञानशक्ति मुखस्वरूप ई मे भो
देशसे व्यक्तिको अपेक्षा दर्शन ज्ञान शक्ति मुख दर
हूँ और पूर्ण होनेकेलिये समर्थ हूँ अतः अपनेमें
लिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४९)

निर्द्ध्याज्ञानजान्धं स्वं दृष्ट्वा ध्यानाग्निना विधिम् ।

दहानि निष्कलङ्कः सन्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यथ-अज्ञानजान्धं निर्द्ध्यै स्वं दृष्ट्वा ध्यानाग्निना विधिम् दहानि
निष्कलङ्कः सन् स्वे स्वरमे स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले अन्धकारको नष्ट करके अपने
आत्माको देख करके ध्यानरूपी अग्निकेद्वारा कर्म
क्रियाको जलाऊँ और अपनेमें अपनेलिये अपने आप
सुखी होऊँ ॥

ओन्नम मित्रेभ्यः

दिनीपांऽस्यायः

प्रारब्ध

(१)

यः संयोगजया दृष्ट्या भाति संयोगजः क्लिप्त ।

तौ नादंत मे न तौ हित्वा स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम्

अन्वय-संयोगजया दृष्ट्या संयोगजः भाति किम तौ अहं न मे
तौ हित्वा स्वे स्वस्मै स्वयं मुखी स्याम् ।

अर्थ-संयोगमे होने वाली दृष्टिके द्वारा जो संयोगज पदार्थ
भासित होता है निश्चयमे वह दोनों अर्थात् संयो
ग संयोगज पदार्थ में नहीं है । मेरे वें दोनों नहीं
लिये उनमे लक्ष्य हटाने रूप उपायसे उन दोनोंको
अपनेमें अपनेलिये स्वयं मुखी होऊँ ॥

(२)

नाहमन्यत्र नान्यस्य न नष्टो न बहिर्गतः ।

किन्तु शायकभाषोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अहं अन्यत्र न अन्यस्य न नष्टः न बहिर्गतः किन्तु श
यः अहम् स्वे स्वस्मै स्वयम् मुखी स्याम् ।

अर्थ-मैं अन्य जगह नहीं हूँ, अन्यका नहीं हूँ न ना
न बाहर गया हूँ किन्तु शायक भाव स्वरूप यह मैं अपनेमें
अपनेलिये स्वयं मुखी होऊँ ॥



(२७)

जागृतिः शयनं पानमक्षिप्रांद्दर्शनं श्रुतिः ।

शक्तिप्रियस्यकिं कृत्यं स्यां स्वप्नं स्ये मुखी स्वयम् ॥

अन्य-शक्तिप्रियस्य मे जागृतिः शयनं पानं अक्षिः वाक् दर्शनं श्रुतिः
आदि किं कृत्यं अस्ति अहं हि स्ये स्वप्नं स्वयम् मुखी स्वयम् ।

अर्थ-शक्ति-ही है क्रिया जिसकी ऐसे मुझ आत्माके जागरण
शयन पान भोजन वचन दर्शन ध्वनि आदि क्या कृत्य हैं ?
नहीं तो फिर मैं तो अपनेमे अपनेलिये अपने आप मुखी
होऊँ ॥

(२८)

महान्येऽजनि संसारो ज्ञाने नश्यति कल्पितः ।

निर्विशन्ने एतोभूत्या स्यां स्वप्नं स्ये मुखी स्वयम् ॥

अन्य-महान्ये संसारः अजनि च कल्पितः सः संसारः ज्ञाने नास्ति
एतः निर्विशन्ने एतः भूत्या स्ये स्वप्नं स्वयम् मुखी स्वयम् ॥

अर्थ-महान्ये ही संसार पैदा हुआ और कल्पित यह संसार ज्ञान
होते ही नष्ट हो जाता है इसलिये निर्विशन्ने स्वप्न ज्ञानमे
ए होकर मैं अपनेमे अपनेलिये अपने स्वप्न मुखी होऊँ ॥

(३७)

परे दृष्टे दृष्टः न स्वः-स्वे दृष्टे न विकल्पना ।

अविकल्पे न सन्तापः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्य-परे दृष्टे स्वः दृष्टः न भवति स्वे दृष्टे विकल्पना न भवति
अविकल्पे सन्तापः न भवति अतः अविकल्प स्वरूपे स्वे स्व
स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-परके देखे जानेपर स्व देखा रहा नहीं रहता । स्वके देखे
रहनेपर अन्य कुछ भी कल्पना नहीं रहती कल्पनाओं
अभावमें सन्ताप नहीं होता इसलिये निर्विकल्प स्वरूप
अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(३८)

मयि सौख्यं मया मे मत् शक्ति भिन्नं न साधनम् ।

आगृह्णानि कथं वृत्तौ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्य-मे सौख्यं मया मत् मयि विद्यते तस्य साधनम् शक्ति भिन्नम्
अन्यत् न अस्ति तदा अहं वृत्तौ कथं आगृह्णानि स्वे स्वस्मै स्व
सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मेरा सुख मेरेद्वारा मुझमें मुझमें है उसका साधन जाननेकी
क्रियासे भिन्न और कुछ नहीं है तब मैं वृत्तिमें क्या आप्र
करूँ । अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(३६)

नाहं देहो न जातिर्मे न स्थानं न च रक्षकाः ।

गुप्तं ज्ञानं प्रपश्यामि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्य-अहं देहः न मे जातिः न मे स्थानं न च मे रक्षकाः न अहं तु गुप्तं ज्ञानं प्रपश्यामि च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मैं देह नहीं हूँ मेरी जाति नहीं है मेरा स्थान नहीं है और मेरे रक्षक भी कोई नहीं है मैं तो अपने गुप्त अर्थात् जो दूसरोंके द्वारा जाना नहीं जा सकता ऐसे ज्ञानको देखूँ और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४०)

क्वान्योऽहं क्व च चिन्ता क्व क्वैकाग्र्यं क्व शुभाशुभम् ।

इमे स्वस्माच्च्युते स्तर्काः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्य-क्व अन्यः क्व अहं च क्व चिन्ता क्व ऐकाग्र्यं क्व शुभाशुभम् इमे स्वस्मात् च्युतेः स्तर्काः सन्ति अहं हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम ॥

अर्थ-कहाँ अन्य है कहां मैं हूँ और कहां चिन्ता कहां एकाग्रता कहां शुभ कहां अशुभ ये सब अपने आपसे च्युत होनेसे तर्क होने हैं मैं तो अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४५)

व्यवहारं परावस्था निश्चये ज्ञानमात्रता ।

ज्ञानमात्रे पराशान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-परावस्था व्यवहारे एव निश्चये ज्ञानमात्रता अस्ति । ज्ञानमात्रे परा शान्तिः अस्ति । अतः ज्ञानमात्रे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-पर पदार्थकी अवस्था अथवा आत्मकी विभाव अवस्था या आत्मा की किमाकारक दशा व्यवहार में ही है निश्चय में तो ज्ञानमात्र अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४६)

रागादिवर्णतः प्रत्यग्ज्ञाते ते प्राप्स्यामि शंशिवम् ॥

विकल्पो विघ्नकृद्यातु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-रागादिवर्णतः प्रत्यक् ज्ञाते सति शिष्यं शं प्राप्स्यामि विघ्नं कृत्वा विकल्पः यातु अहं हि स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ-रागादि विभाव प वर्णरसादिसे भिन्न मेरे ज्ञान लिये जानकर शिष्य स्वरूप गुण प्राप्त करूँगा विघ्न करनेवाला विघ्न जाग्रो हटो मैं तो स्वयं स्वयं लिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(४१)

कः कस्य कीदृशः क्येति देहमस्य विशेषयन् ।

सहजानन्द सम्पन्नः स्यां स्वस्मै स्वे मुखी मयम् ॥

अन्यय-कः कस्य कीदृशः क इति देह अपि अविभेदयन् अहं सहजानन्द सम्पन्न मन् स्वे स्वस्मै स्वयं मुखी स्याम् ॥

अर्थ-कौन ? किमहा ? कैसा ? कहाँ ? इस प्रकार देह तरुमें भी विशेषण न करता हुआ मैं स्वाभाविक ध्यानन्दमें युक्त होता हुआ अपनेमें अपने अर्थ स्वयं मुखी होऊँ ॥

इति श्री मदध्यात्मयोगिना शान्तमूर्तिना न्यायार्थेण सिद्धान्त-
न्यायसाहित्य शास्त्रिणा पूज्यम्भी १०५ सुल्लक्ष्मनोदरपरिणा सहजानन्द-
न्यामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायामन्तर्ज्ञानप्ररूपो द्वितीयो-
ऽध्यायः समाप्तः ।

पुनः पुनः ज्ञानमय ज्ञानमय ज्ञानमय ज्ञानमय ज्ञानमय
स्वभारी अपनेमें अपने अर्थ अपने आप मुखी होऊँ ॥

(५३)

यत्र वासो रतिस्तत्र तत्रैकत्वं ततो निजे ।

उपित्वा ज्ञान दृष्ट्याहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-उपयोगस्य आत्मनः यत्र वासः भवति तत्र रतिः भवति यत्र रतिः भवति तत्र एकत्वं भवति ततः अहं निजे ज्ञानदृष्ट्या उपित्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी भवाम् ॥

अर्थ-उपयोग-स्वरूप आत्माका वहां वास होता है वहां रति हो जाती है जहां रति होती है वहां एकपन हो जाता है इस लिये मैं निज आत्मामें ज्ञान दृष्टिकेद्वारा निवास करके अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(५४)

यज्ज्ञानेन जगन्मन्ये तत्र मे किं तदादतिः ।

स्वादतिः सा स्य वृत्तिर्हि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यज्ज्ञानेन अहं जगत् मन्ये तत् मे न पुनः किं तदादतिः स्थानं च स्वादतिः सा एव या स्ववृत्तिः अतः हि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी भवाम् ॥

अर्थ-जिम विशेषज्ञानकेद्वारा मैं जगत्को मान रहा हूँ वह ज्ञान ही मेरा सहज भाव नहीं है तो फिर क्या जगत्में आदर हो ? और स्वका आदर वह ही है जो स्वमें वृत्ति हो इसलिये नियमसे अब मैं अपनेमें ही रहकर अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊँ ।

(१)

रागद्वेषो हि संसारः संसारे दुःखपूर्णिमः ।

संसारतो विज्यातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-हि रागद्वेषो ममारः मः न नारः दुःखपूर्णिमः अस्मि अतः संसारः
विरज्य स्ये स्वस्मै स्वयं सुखी भवाम् ॥

अर्थ-निश्चयसे राग और द्वेष संसार है और वह संसार दुःखने
व्याप्त है इस लिये संसारसे अनुराग न करके मैं अपने
अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१०)

संसारजो हि पर्यायः संसार उपचारतः ।

त्यक्त्वा तत्मूल संसारं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-हि संसारजः पर्यायः उपचारतः संसारः उच्यते अहं तु तन्मूल
संसारं त्यक्त्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी भवाम् ॥

अर्थ-निश्चयसे संसार (रागद्वेष मोह आदि विभाव) से है
वाली व्यक्तपर्याय तो उपचारसे संसार कह जाता है
तो उसके मूलभूत संसारको ही उपयोगसे हटाकर अपने
अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१३)

प्राप्ता ये दुर्गतेः क्लेशाः भ्रान्त्या भ्रान्त्या मयैवते ।

मुक्तवा भ्रान्तिमतः कालात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-दुर्गतेः ये क्लेशाः प्राप्ताः ते भ्रान्त्या भ्रान्त्या मया एव प्राप्ताः ।

अतः कालात् भ्रान्तिं मुक्तवा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-दुर्गतिके जो जो क्लेश प्राप्त किये हैं वे भ्रमसे परिभ्रमण करके मने ही तो प्राप्त किये हैं अब इस समयसे भ्रान्ति को छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१४)

आपत्पूर्णभवे क्षं को भ्राम्यामि तत्त्वतो निजे ।

उपयोगे ततः स्वस्थ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-आपत्पूर्ण भवे अहं एकः भ्राम्यामि च तत्त्वतः निजे उपयोगे ततः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-आपत्तियोंसे भरे हुए संसारमें मैं एक याने अकेले भ्रमण करता हूँ और धाम्निवमें अपने उपयोगमें भ्रमण करता हूँ इसलिये स्व अर्थान् निरपेक्ष उपयोगमें स्थित होता हूँ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(१५)

देहान्तरं व्रजाम्येको देह मेकस्त्यजाम्यहम् ।

परदृष्टिं हि तत्स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम्

अन्यथा—अहं एक एव देहान्तरं व्रजामि च एक एव देहं त्यजामि अथवा

परदृष्टिं त्यजामि तत् स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं मुखी स्याम ॥

अर्थ—मैं एक याने अकेला ही तो शरीरान्तरको जाता हूं और

अकेला ही शरीरको छोड़ता हूं अथवा परदृष्टिको छोड़ता

हूं इसलिये परदृष्टिको छोड़कर स्वस्थ होता हुआ अपनेमें

अपनेलिये अपने आप मुखी होऊँ ॥

(१६)

योग योग दुःखादौ किञ्चिन्मित्रं न तत्त्वतः ।

विप्रः स्वस्य मित्रं स्वः स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥

योग योग दुःखादौ कश्चित् अपि मे मित्रं न वर्तते तु तत्त्वतः

विप्रः स्वः स्वस्य मित्रं अस्ति अतः स्वे स्वयं स्वस्मै मुखी

म् ॥

योग-संयोग दुःख आदिमें कोई भी मेरा मित्र नहीं है

नतु वास्तवमें निज आत्मामें लीन हुआ मैं ही स्व

का मित्र हूं इसलिये स्वके अर्थ मुखी होऊँ ॥

(१७)

यदन्येषां कृते चेष्टै एकौ भुञ्जे हि तत्फलम् ।

ममै तत्रापि चेशसीन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यत् अन्येषां कृते अहं चेष्टे हितरत्नं अहं एकः भुञ्जे यतः तत्र
अपि चेष्टा स्वस्मै आसीत् ततः अन्य विकल्पं विहाय स्वे स्वस्मै
स्वय सुखी स्याम् ॥

अर्थ-अन्य प्राणियोंके लिये मैं जो चेष्टा करता हूँ निश्चय
उसका फल मैं ही भोगता हूँ क्योंकि वहाँ भी चेष्टा मैं
लिये ही थी इसलिये अन्यके विकल्पको छोड़कर
अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१८)

कारणं सर्वं दुःखानां स्वज्ञानाभाव एव हि ।

यैर्नको यच्चित्तमस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-सर्वं दुःखानां कारणं हि स्वज्ञानाभाव एव अस्ति येन
अपि अहं यच्चित्तः तस्मात् स्वं विज्ञाय स्वे स्वस्मै स्वयं सु
ख्याम् ॥

अर्थ-समस्त दुःखोंका मूल कारण निश्चयसे अपने आत्म
का अभाव ही है जिससे एक अद्वैत होता हुआ भी
टगाया गया इस कारण अब मैं अपनेको जानकर अपने
अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२१)

देहादेव यदाभिन्नः कथं बन्धुमिरेकता ।

निमक्तस्य सदा गात्र्यं स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यदा अहं देहादेः एव भिन्नः अस्मि तर्हि बन्धुमिः एकता कथं
स्यात् विभक्तस्य स्वस्य द्रष्टुः सद्यः सौख्यं भवति तस्मात् स्वे स्वस्मै
स्वयं मुखी स्याम् ॥

अर्थ-जब मैं देह आदिमें भी भिन्न हूँ तब बन्धुजनोमें मैंसे
एकता कैसे होसकती है? अर्थात् किमीभी परवस्तुमें मैंसे
एकपन नहीं हो सकता बरबसे भिन्न स्वके दृष्टाके सदा
निराकुल सौख्य होता है इस कारण मैं अपनेमें अपनेलिये
अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२२)

देहोऽणुवज्रजः स्वात्माऽतीन्द्रियो ज्ञान विग्रहः ।

स्वात्मन्येव स्थिरस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥

अन्वय-देहः अणुवज्रजः अस्ति स्वात्मा अतीन्द्रियः ज्ञानविग्रहः अस्ति
तस्मात् स्वात्मनि एव स्थिरः मनः स्वे स्वस्मै स्वयं मुखी स्याम् ॥

अर्थ-शरीर परमाणुओंके समूहसे जायमान है निज आत्मा
अतीन्द्रिय तथा ज्ञान ही जिसका शरीर है ऐसा है इस
लिये निज आत्मामें ही स्थिर होता हुआ मैं अपनेमें अपने
द्वारा अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२३)

यैरर्थैर्मम सम्बन्धस्ते स्वरूपात्पृथक् सदा ।

तत्स्य दृष्ट्याऽसुखं तेन स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—यैः अर्थैः मम सम्बन्धः अस्ति ते स्वरूपात् मदा पृथक् मन्ति
तत्स्यदृष्ट्या असुखं भवति तेन स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम ॥

अर्थ—जिन जिन अर्थोंके साथ मेरा सम्बन्ध है वे सब स्वके
स्वरूपसे सदा भिन्न हैं उनमें आत्माकी दृष्टिसे दुःख
होता है इसलिये मैं अपनेमें अपनेद्वारा अपने अर्थ सुखी
होऊँ ॥

(२४)

पत्नास्थिरुधिरदेहे स्वबुद्ध्या क्लेशभाग्भवेत् ।

तत्र रागेनको लामः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—पत्नास्थिरुधिर देहे स्वबुद्ध्या पापी क्लेशभाग् भवेत् तत्र रागेनः
अपि लामः न अस्ति । अहं तु स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ।

अर्थ—मांस हड्डी रुधिर (खून) आदि हैं जिसमें ऐसे इस देहमें
स्व आत्माकी बुद्धि करनेसे प्राणी क्लेशका पात्र होता है
उस देहमें राग करनेसे कोई लाम नहीं है तो अपनेद्वारा
अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२९)

शुभः कषायमान्द्येनाऽशुभस्तोत्र कषायतः ।

अकषायेनशं नित्यं स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥

अन्वय-कषायमान्द्यं न शुभः तीव्रकषायतः अशुभः भवति च अकषायेन
स्वीयं शं विलमति नन अकषायः भूया स्वे स्वस्मै स्वयं मुखी
स्याम् ॥

अर्थ-कषायकी मन्दतासे शुभ प्रवर्तन अथवा शुभवन्ध होता
है और तीव्र कषायसे अशुभ प्रवर्तन अथवा अशुभवन्ध
होता है और अकषाय भावसे आत्माके निज सहज
मुख विलासको प्राप्त होता है इसलिये कषाय रहित
होकर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप मुखी होऊँ ॥

(३०)

मनोवाक्कायवृत्तीनां निवृत्तेरुपदेशनम् ।

स्वस्थित्यै स्वस्थितौशान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥

अन्वय-मनोवाक्कायवृत्तिनां निवृत्तेः उपदेशनम् स्वस्थित्यै अस्ति
स्वस्थितौ शान्तिः यतते तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं मुखी स्याम् ॥

अर्थ-मन वचन कायकी प्रवृत्तियोंकी निवृत्तिरूप उपदेश
आत्मामें स्थितिके लक्ष्यके लिये होता है और स्वात्म
स्थित होनेमें ही शान्ति है इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये
अपने आप मुखी होऊँ ॥

(३१)

• मनोवाक्कायप्रवृत्तिश्चेच्छुभैवस्तूपदेशनम् ।
 स्वस्थित्यं स्वस्थितौ शान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥
 अन्वय-मनोवाक्कायप्रवृत्तिः भवेत्तु चेत्तु शुभा एव अस्तु उपदेशनम्
 स्वस्थित्यं अस्तु हि शान्तिः स्वस्थितौ अस्ति तस्मात् स्वे स्वयं
 स्वस्मै सुखी स्याम् ॥
 अर्थ-मन वचन कायकी प्रवृत्ति होती ही तो शुभ ही होओ
 तबसे उपदेश स्वकी स्थितिके लक्ष्यसे होओ निश्चयसे
 शान्ति स्वकी स्थितिमें ही है इसलिये मैं अपनेमें
 अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३२)

• शुद्धोपयोगलक्षणेनात्मा स्वयं रक्ष्यते तदा
 स्वस्मिन् स्वमेव वेत्त्यस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे मुखी स्वयम् ॥
 अन्वय-शुद्धोपयोग लक्षणे न आत्मा स्वयं रक्ष्यते च सदा स आत्मा
 स्वस्मिन् स्वं एव वेत्ति अस्मात् शुद्धोपयोग स्वमाने स्वे स्वस्मै
 स्वयं सुखी स्याम् ॥
 अर्थ-शुद्ध उपयोगके लक्ष्यसे आत्मा स्वयं रक्षित हो जाता है
 और उस समय वह आत्मा अपनेमें अपनेको जानता
 रहता है अतः शुद्धउपयोगस्वभावी मैं अपनेमें अपने
 अर्थ अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३७)

अग्निना काञ्चनं यद्वत् तप्यमानस्तपोऽग्निना ।

शुद्धीभूय लभे स्वास्थ्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—अग्निनां काञ्चनं यद्वत् तपोऽग्निना तप्यमानः शुद्धीभूय स्वास्थ्यं लभे च स्वे स्वयं स्वस्मै सुखी स्याम् ।

अर्थ—अग्निके द्वारा सुवर्णकी तरह तप रूपी अग्निके द्वारा तपता हुआ शुद्ध होकर स्वास्थ्य अर्थात् स्वकी सहज स्थितिकी प्राप्त करूँ और अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(३८)

विरागपरिणत्या मे जायते कर्मणा क्षयः ।

रागभिन्नमतो विन्दन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—मे विरागपरिणत्या कर्मणा क्षयः जायते अतः रागभिन्नं स्वं विन्दन् स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ॥

अर्थ—मेरी विराग परिणतिमें कर्मोंका क्षय अर्थात् पृथक् भवन स्वयं हो जाता है इसलिये रागादिवि भावसे भिन्न अपनेकी अनुमति करता हुआ मैं अपनेद्वारा अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४१)

आत्मसाक्षात्पवित्राने दुर्लभादपि दुर्लभम् ।

नम रमे ए तत्रैव स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अर्थ-आत्मसाक्षात्पवित्राने दुर्लभात् अपि दुर्लभम् अस्मि अहं हि तत्र
एव लभे ए तत्र एव रमे ए स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-आत्मसाक्षात् पदार्थ स्वरूपका बोध दुर्लभता भी दुर्लभ है मैं
तो उस आत्मज्ञानको प्राप्त करूं और आत्मामें ही रमण
करूं और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(४२)

यस्य ध्यायक भावस्य स्वस्य विनि विना जगत् ।

ध्यातं व्यर्थं हितं ज्ञातया स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अर्थ-यस्य ध्यायकभावस्य स्वस्य विनि विना ज्ञातं समस्त अपि जगत्
व्यर्थं अस्मि तस्मान् हितं ज्ञातया स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ-जिस ध्यायक भाव स्वरूप स्वके ज्ञानके विना जाना हुआ
समस्त भी जगत् व्यर्थ है इसलिये हितको जानकर मैं
अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

इति श्री महद्भ्यात्मयोगिना शान्तमूर्तिना न्यायतीर्थेण सिद्धान्त-
न्यायसाहित्यशास्त्रिणा पूज्यश्री १०५ छुल्लकमनोहरवर्यणिना सहजानन्द-
ध्यामिना विरचितायां महजानन्दगीतायां भाषनाप्रारम्भकस्तृतीयोऽध्यायः
समाप्तः ।

(४४)

लोकं द्रव्याएवनेकानि वर्तन्ते किन्तु वै निजे ।

अहन्तां किं पुनः कुर्यां म्यां स्वस्मै स्वं सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-लोके द्रव्याणि अनेकानि वर्तन्ते किन्तु अहं वैनिजे अस्मि पुनः
किं अहन्ता कुर्याम् अहं हि स्वं स्वस्मै स्वयं सुखी स्वयम् ॥

अर्थ-लोकमें द्रव्य अनेक हैं किन्तु निधयसे तो निज हीमें

फिर क्या क्या अहंकार करूं मैं तो अपनेमें अपने

अपने आप सुखी होऊँ ॥

(४५)

अक्षिपूर्णत्वमज्जातिध्यादिदुर्लभवस्तुनि ।

प्राप्ते लाभो यदि स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अक्षिपूर्णत्व मज्जातिध्यादिदुर्लभवस्तुनि प्राप्ते लाभः तदा म
याद स्वस्थ एवम् अतः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्वयम्

अर्थ-इन्द्रियोक्ती पूर्णता, उत्तमजाति बुद्धि आदि दुर्लभ

प्राप्त होनेपर लाभ तब माना जावे जब कि मैं स्वस्थ
इमलिये अब स्वस्थ होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये

आप सुखी होऊँ ॥

(५१)

आत्मपाथान्पवित्रान् दुर्लभादपि दुर्लभम् ।

लभे रमे च तत्रैव स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्य-आत्मपाथान्पवित्रान् दुर्लभान् अपि दुर्लभम् अस्मि अहं हि तन्
एव लभे च तत्र एव रमे ए स्वे स्यामै स्वयं सुखी स्वयम् ॥

अर्थ-आत्मपथों यथार्थ स्वरूपका बोध दुर्लभों भी दुर्लभ हैं मैं
नो उम आत्मज्ञानको प्राप्त करूं और आत्मामें ही रमण
करूं और अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

(५२)

यस्य ज्ञायक भावस्य स्वस्य चित्तं विना जगत् ।

ज्ञातं ध्यर्थं हितं ज्ञात्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्य-यस्य ज्ञायकभावस्य स्वस्य चित्तं विना ज्ञातं समस्तं अपि जगत्
ध्यर्थं अस्मि तस्मान् हितं ज्ञात्वा स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्वयम् ॥

अर्थ-जिस ज्ञायक भाव स्वरूप स्वके ज्ञानके विना जाना हुआ
समस्त भी जगत् ध्यर्थ है इसलिये हितको जानकर मैं
अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊं ॥

इति श्री महद्भ्यात्मयोगिना शान्तमूर्तिना व्यायतीर्थेण सिद्धान्त-
न्यायसाहित्यराशिप्रणा पूज्यश्री १०५ सुल्लक्ष्मणोदरपरिणा सहजानन्द-
श्यामिना विरचितायां सहजानन्दगीतायां समाप्तः ।

(५)

आशा त्यागोहि मे वन्धुमित्रप्राता गुरुः पिता ।

तस्यैव शरणं सत्यं स्यां स्वस्मै स्वं सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-हि आशा त्यागः मे वन्धुः आशा त्यागः मे मित्रं प्रातागुरुः पिता
अस्ति तस्य एव शरणं सत्यं अस्ति अतः आशां विमुक्त्यै स्व-
स्मे स्वस्मै सुखी स्याम् ।

अर्थ-निश्चयसे आशाका त्याग ही मेरा वन्धुः है, आशात्याग
ही मेरा मित्र है, रक्षक है, गुरु है, पिता है, उस हीरा
शरण सच्चा है इसलिये आशाको छोड़कर मैं स्व-
अपनेमें अपने अर्थ सुखी होऊँ ॥

(६)

नैराश्येऽपिहि नैराश्यं तस्य का तुलनाभुवि ।

अतो नैराश्यमालम्ब्य स्यां स्वस्मै स्वं सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-हि यस्य नैराश्ये अपि नैराश्यं अस्ति तस्यभुवि का तुलना विना
अतः नैराश्यं आलम्ब्य स्वयं स्वे स्वस्मै सुखी स्याम् ।

अर्थ-निश्चयसे जिस आत्माके नैराश्य अर्थात् आशाके अभाव
या मोक्षमें भी नैराश्य (आशाका अभाव) है उस आत्मा
की लोकमें क्या तुलना हो सकती है इसलिये नैराश्य
का अवलम्बन करके मैं स्वयं ही अपनेमें अपने अर्थ सुखी
होऊँ ॥

(११)

भूतो भवंपु सम्पन्नो न तुष्टोऽभूदनर्थता ।

मायाविनी किमारासे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अर्थ-अहं भवेपु सम्पन्नः भूतः किन्तु तूः न अभून् अपितु अनर्थता एव अभूत् तर्हि मायाविनी किं आरासे अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मैं अनेक भवोमें : लौकिक विभूतियोंसे सम्पन्न हुआ किन्तु सन्तुष्ट नहीं हुआ बल्कि अनर्थ ही हुआ । तब माया-विनी विभूतिकी मैं क्या आशा करूं मैं तो अपनेमें अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(१६)

पुण्यापुण्यफलं दृश्य मद्दृश्याचिच्चमत्कृतिः ।

वीततृष्णस्य स्वस्थस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अर्थ-दृश्यं एतत् सर्वं पुण्यापुण्यफलं अस्ति च वीततृष्णस्य आत्मनः चिच्चमत्कृतिः अदृश्या अस्ति सा स्वस्थस्य प्रतिभाति ततः स्वस्थः सन् एव स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-दिखनेवाला यह सब पुण्य और पापका फल है और तृष्णा रहित आत्माकी चैतन्य चमत्कार रूप अलौकिक विभूति अदृश्य है वह निज आत्मामें स्थित होने वालेके अनुभव इसलिये मैं तो ध्यम्न होता हुआ अपनेमें अपने सुखी होऊँ ॥

(१३)

तात्पर्येऽनाद्वैतेऽपि वस्तूनां वियोगो नार्थकृत् ततः ।

वोततृष्णः स्वभावो मेऽस्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-तात्पर्ये अपि अनाद्वैते वस्तूनां वियोगः अर्थकृत् न अस्ति
वोततृष्ण मे स्वभावः अतः स्वभावमये स्वे स्वस्मै स्वयं
स्याम् ॥

अर्थ-तृष्णा होनेपर अथवा तृष्णा न होनेपर दोनों अवस्था
में वस्तुओंका वियोग अर्थकारी नहीं है अर्थात् वह
है वह तृष्णा न होने रूप परिणाम मेरा स्वभाव ही है।
लिये स्वभावमय अपने आपमें अपनेअर्थ स्वयं सु
होऊँ ॥

(१४)

पूर्यते पुण्यकामार्थैर्न किञ्चिन्मे ततोहि तान् ।

त्यक्तवात्मन्येव तिष्ठेयम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-मे पुण्य कामार्थैः किञ्चित् अपि न पूर्यते ततोहि तान् त्याग्य
आत्मानि एव तिष्ठेयम् च स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ-मेरा पुण्य, काम व धनों से कुछ भी पूरा नहीं पड़ता इस
लिये नियममे मैं उनको त्यागकर आत्मामें ही रहूँ
आगे अपनेमें अपनेअर्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(१५)

भूतो भवेपु सम्पन्नो न तुष्टोऽभूदनर्थता ।

मायाविनी किमारासे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्य-अहं भवेपु सम्पन्नः भूतः किन्तु तटः न अभूत् अपि न अनर्थता
एवमभूत् तर्हि मायाविनी किं आरासे अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं
सुखी स्याम् ॥

अर्थ-मैं अनेक भवोमें लौकिक विभूतियोंसे सम्पन्न हुआ किन्तु
सन्तुष्ट नहीं हुआ बल्कि अनर्थ ही हुआ । तब माया-
विनी विभूतिकी मैं क्या आशा करूं मैं तो अपनेमें अपने
अर्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(१६)

पुण्यपापफलदृश्य भट्टरयाचिच्चमत्कृतिः ।

वीततृष्णस्य स्वस्यस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्य-हरय एतन् सर्वं पुण्यापुण्यफलं अस्ति य वीततृष्णस्य आत्मन
चिन्तयामत्कृतिः अहरय अस्ति सा स्वस्यस्य प्रणिधानं तत्र
स्वस्यः सन् एव स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-दिलबनेवाला यह सब पुण्य और पापका फल है और तृष्ण
गहित आत्माकी चेतन्य चमत्कार रूप अलौकिक विभूति
अदृश्य है यह निज आत्मामें स्थित होने वाला अनुभ-
व्य है इसलिये मैं तो स्वयं होता हूँ अपनेमें अपने
अर्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(२१)

भोग मोक्षपिण्डोऽनेकं वाञ्छाहीनो हि दुर्लभः ।

स एव सहजानन्दः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यथ-भोग मोक्षपिण्डः अनेकं सन्ति तु वाञ्छाहीनः दुर्लभः क
हि स एव सहजानन्दः वर्तते अतः वाञ्छाहीन स्वभावे स्वे र
स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-भोग और मोक्षके चाहने वाले अनेक हैं परन्तु
रहित पुरुष दुर्लभ है निश्चयसे वह वाञ्छा रहित अ
ही स्वाभाविक आनन्दमय है इसलिये मैं तो वाञ्छा
स्वभाव मय निज आत्मा में आत्मार्थ स्वयं सुखी होऊँ

(२२)

ज्ञानं रतस्य धर्मायं काम मोक्षे जनी मृती ।

हेयादेयेऽपि चिन्ता न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्यथ-ज्ञानरतस्य आत्मनः धर्मायं काममोक्षे जनी मृतीक अपि चिन्ता न
अस्ति अतः ज्ञानरूपे स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ-ज्ञानमें लीन हुए आत्माके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जन्म,
मरण आदिमें कहीं भी चिन्ता नहीं है इसलिये ज्ञान
स्वरूप निज आत्मा में आत्मार्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(२३)

लामंऽपिभूतिस्त्रीनां तस्यागेन विना न शम् ।

प्रत्याख्यानमये ज्ञानं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-भूतिस्त्रीनाम् लामं अपि तस्यागेन विना न भवति अतः
प्रत्याख्यानमये ज्ञाने स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-सम्पत्ति और कीर्तियोंके लाम होनेपर भी उनके त्यागके
बिना सुख नहीं होता है इसलिये प्रत्याख्यानमय ज्ञान
स्वमावी निज आत्नामें आत्मार्थ स्वयं सुखी होऊँ ॥

(२४)

मुमुक्षुर्षुमुक्षुश्च लम्बनां हि शिवाशिवम् ।

इच्छा दीनः स्वविश्रान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-य.मुमुक्षुः च मुमुक्षुः स्यात् मः शिवाशिवं आलम्ब्यताम् हि इच्छा
दीनः स्वविश्रान्तः अस्ति अस्मान् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-जो मोक्षकी इच्छा करने वाला और भोगकी इच्छा करने
वाला हो वह शुभ और अशुभका आलम्बन करे परन्तु
सर्व इच्छाओंमें रहित पुरुष अपनेमें ही विश्राम पाया
हुआ रहता है इसलिये मैं आत्मामें अपनेलिये अपने ही
द्वारा सुखी होऊँ ॥

(१७)

मुप्तमत्तदशालोके भ्रमो हि स्वच्युतौ दशाः ।

सर्वाभ्रमास्ततः स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अव्यय-लोकें मुप्त मत्त दशाः भ्रमाः कथ्यन्ते हि स्वच्युतौ सर्वाः दशाः
भ्रमाः सन्ति ततः स्वस्थः सन् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-संसारमें सोये हुए व पागल हुएकी दशाएं भ्रम रूप
कही जाती हैं परन्तु वास्तवमें निज आत्मासे च्युति
होनेपर सब ही दशाएं (चाहे चतुराई पूर्ण हो) भ्रम रूप
हैं इसलिये मैं तो स्वमें ही स्थित होता हुआ स्वमें स्व
के अर्थ सुखी होऊँ ॥

(१८)

यततामघनीवृत्ते न तुष्येत्तु यती व्रते ।

ज्ञानस्थितिप्रतार्षोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अव्यय-अघनी वृत्ते यतताम् तु घनी व्रते एव न तुष्येत् यतः प्रतार्षः
ज्ञानस्थितिः अस्ति अतः स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ।

अर्थ-अघनी पुराण व्रत रूप प्रवृत्तिमें प्रयत्न करे परन्तु घनी व्रत
में ही मनुष्ट्र न हो जाये क्योंकि व्रतका पालन न करनेका
प्रयोजन ज्ञानमायमें स्थित होना है इसलिये अपनेमें अपने
अर्थ अपनेद्वारा स्वयं सुखी होऊँ ॥

॥

१, भगवतः

पाम ॥

उता दुमा

मलियं रामे

ॐ न मुली
स्वामी स्वयंउतना ही धीर
स्वमें रहनेसे होता
न अर्थ अपने आप

(३७)

घण्टाघं नूतनं लोके तत्त्वतस्तत्त्वबोधनम् ।

स्ववृत्तिर्यत्र तत्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-लोके घण्टाघं दिन नूतनं कथ्यते तत्त्वतः यदा तत्त्वबोधनं भवति तत् नूतनं दिन समस्ति तत् तत्त्वबोधनं तत्र भवति यत्र स्ववृत्तिः स्यात् तस्मात् स्वे स्वनन्द्यप्रकाशं प्राप्य स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-लोकमें वर्षवा आदि दिन नूतन कहा जाता है परन्तु वास्तवमें जिस दिन तत्त्वका बोध हो वही नूतन दिन है वह तत्त्वबोध उस स्थितिमें है जिस स्थितिमें निज आत्माकी वृत्ति हो इसलिये मैं निज आत्मामें निजका नूतन प्रकाश पाकर अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ ।

(३८)

स्वयं यत्कुरुमायाति तत्कृतौ न विपत्कचित् ।

अन्यथा क्लेशता तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-यन् स्वयं कुरुमायाति तत्कृतौ कचित् विपत् न अस्ति अन्यथा क्लेशता भवति तस्मात् कर्तृत्वविकल्पं परित्यज्य स्वयं स्वस्मै स्वे सुखी स्याम् ।

अर्थ-जो स्वयं अर्थात् करनेकी भावना या वासना या बुद्धिके बिना करनेमें आता है उस कार्यमें कहीं विपत्ति नहीं है, अन्यथा अर्थात् करनेकी वासना या प्रयत्न बुद्धि करनेपर दुःख ही है इसलिये कर्तृत्वके विकल्पको त्यागकर स्वयं स्वयंके अर्थ स्वयंमें सुखी होऊँ ॥

(४३)

है: मैं इन्द्रध्वं संतापो विपनुवृष्णान्ययोगतः ।
 एतेऽनिष्टं न किञ्चिद्विद्यां स्यात् स्वस्मै स्ये मुखी स्वयम् ॥
 अन्य-दुःखं इन्द्रध्वः च संतापः विपनु वृष्णा अन्ययोगतः भवन्ति,
 हि एते किञ्चिन् अनिष्टं न आनि अतः एते स्ये स्वामी स्वयं
 मुखी स्याम् ॥
 अन्य-दुःख, इन्द्रध्व, और संताप, विपनि एवं वृष्णा ये सब अन्तर्ध्व
 अन्य पदार्थके संयोगमें होते हैं, निश्चयसे एक पदार्थमें
 कुछ भी अनिष्ट नहीं है इसलिये एक स्वरूप निज आत्मा
 में अपने लिये अपने आप स्वयं मुखी होऊँ ॥

(४४)

कषायविषयत्यागे स्वास्थ्यमन्तर्ध्वहिर्द्वयम् ।
 तस्यागो ज्ञानमात्रं हि स्यात् स्वस्मै स्ये मुखी स्वयम् ॥
 अन्य-कषायविषयत्यागे अन्तर्ध्वहिर्द्वयम् स्वास्थ्यं अस्ति हि ज्ञानमात्रं
 तस्यागः अस्ति अतः ज्ञानमात्रे स्ये स्वस्मै स्वयं मुखी स्याम् ॥
 अर्थ-कषाय और विषयके त्यागमें अन्तरंग और बहिरंग दोनों
 प्रकारका स्वास्थ्य है वास्तवमें ज्ञानमात्र स्थिति रहना ही
 कषायका त्याग है अतः मैं ज्ञानमात्र अपनेमें अपनेअर्थ
 स्वयं मुखी होऊँ ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

(४९)

पापोदयं न हानिर्मे हानिः पापमये निजे ।

पापं परच्युतिस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।

अन्वय-पापोदये मे हानिः न अस्ति निजे पापमये सति हानिः अस्ति ॥
परं च्युतिः एव अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-पापके उदयमें मेरी हानि नहीं है परन्तु निज आत्माके
पापमय होनेपर हानि है पाप पर वदार्थमें गिरना ही है
इसलिये मैं तो अपनेमें ही अपने लिये अपने आप सुखी
होऊँ ॥

(५०)

पुण्योदये न लाभो मे लाभः पुण्यमये निजे ।

पुण्यं स्ववृत्तिता तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-पुण्योदये मे लाभः न किन्तु निजे पुण्यमये सति लाभः वर्तते
पुण्यं स्ववृत्तिता एव अस्ति तस्मात् स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी
स्याम् ॥

अर्थ-पुण्यके उदयमें मेरा लाभ नहीं है किन्तु निज आत्माके
पुण्यमय होनेपर लाभ है, पुण्य निज आत्मामें रहना ही
तो है इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी
होऊँ ॥

(29)

इति चेत् किं पक्षपात कृत्यं सिद्धिम् ।

मन्त्रायः मन्त्रिणः मन्त्रिणः मन्त्रिणः मन्त्रिणः ॥

कनक-एवमपि ब्राह्मणेति ननु ब्राह्मणं विवेच्यते ब्राह्मणः
 ब्रह्मणि ब्रह्मैव सा ब्रह्मं यतिं मामासु तं ब्रह्मैव
 मुनी ब्रह्म ॥

स्वर्ग-श्री मैंने पहिले देखा की वह अपने कपासमें होने वाली देखा
है कपास रहित भाष तो स्वर्ग रहता ही है और वह स्वर्ग
गुरु स्वर्ग है इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये स्वर्ग चुनी
होऊँ ॥

(४३)

मनो वाक्यापित्री वाचस्पत्येन्द्रागस्त्योऽनुत्तमम् ।

गुणं स्वास्थ्यमनिच्छात् स्वो स्वस्मै स्वे मुत्सी स्वयम् ॥

अन्यथा-यावत् मनो वाचकादिषु दिदिता चेष्टा अस्ति इच्छा एव परंतु
ततः अगुर्त भवति त्याग्यं अनिच्छा अस्ति तत एव मुक्तं
विद्यते अतः त्वे त्वमी त्वयं गुणीत्याम् ॥

अर्थ-जितनी भी मन वचन काय सम्बन्धी की हुई देखा है वह
इच्छा ही वो है अर्थात् इच्छाका व्यक्त स्वरूप है उससे
दुःख होता है स्वमे स्थिति रूप भाव अनिच्छा है वह ही
तो सुख है शूलिये मैं स्वमे ही स्वके अर्थ स्वयं सुखी
होऊँ ॥

(३)

ये दृश्यास्ते न जानन्ति जानन्तो निर्विकल्पकाः ।

कं ब्रुवाणि क्व तुष्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—ये दृश्याः सन्ति ते न जानन्तिः ये जानन्तः ते निर्विकल्प-
सन्ति अतः अहं कं ब्रुवाणि क्व तुष्याणि स्वे स्वस्मै स्वयं सु-
ख्याम् ।

अर्थ—जो दिखने योग्य है वे जानते नहीं हैं जो जानने वाले
वे स्वभावसे विकल्पशून्य हैं इसलिये मैं किसको बो-
कहां सन्तोष करूं अपनेमें अपने लिये स्वयं सुखी होऊं

(४)

स्तोतारः क्षणिकाः सर्वे स्तुत्यमन्यः क्षणक्षयी ।

तुष्यः कस्तोपकः कथं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय—एते सर्वे स्तोतारः क्षणिकाः सन्ति स्तुत्यमन्य क्षणक्षयी आ-
पुनः कः तुष्यः च कः तोपकः अहं तु स्वे स्वयं स्वस्मै सु-
ख्याम् ॥

अर्थ—ये सब स्तुति करने वाले लोग क्षणिक हैं मेरी स्तुति हो-
ई ऐसा मानने वाला भी क्षणिक है फिर कौन तो सन्त-
करने योग्य है और कौन सन्तोष करने वाला है मैं
अपने आप स्वके अर्थ सुखी होऊं ॥

(५)

न्यं वृत्तं चमत्पायि सलिका पाङ्कमयी स्तुतः ।
मे वृत्तं न मे पाणी स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

न्यं वृत्तं चमत्पायि अस्ति पाङ्कमयी स्तुतिः सलिका अस्ति
पुनः मे वृत्तं न मे पाणी न अस्ति अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी
स्याम् ॥

५-स्तुति जिम घटनाके आश्रयसे की जाती है वह घटना
चणमङ्गुर है वचनमयी स्तुतिका शब्द चणमङ्गुर
है स्ति मेरी न घटना है और मेरी न पाणी है मैं तो
अपनेमें अपने आप अपने लिये स्वयं सुखी होऊँ ॥

(६)

लोकोऽमंग्योऽमितः कालोऽनन्ताः जीवाः कदा कदा ।
मोक्ष्यन्ते क्व क्व के केऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

६-कालः अमितः लोकः अमंग्यः अस्मि जीवाः अनन्ताः सन्ति
कदा कदा क्व क्व के के मोक्ष्यन्ते अतः प्रजामादिकल्प विहाय
स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

६-काल अपरिमित अर्थात् अनन्त है लोक अमंग्यात् प्रदेशी
है जीव अनन्त है फिर क्व क्वतक कदां कहांपर कौन
कौन प्राणी स्तुति करेंगे इसलिये प्रशंसाके विकल्पको
छोड़कर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने दाग सुखी होऊँ ॥

(७)

स्वैकत्वेऽनुगताः स्वैभ्यः स्वस्पर्कुर्वन्ति तं क्रियाम् ।

भ्रान्त्या विमुक्तं किं स्याति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-स्वैकत्वे अनुगता ते प्राणिन स्वैभ्यः स्वस्य क्रियांकुर्वन्ति-

भ्रान्त्या विमुक्तं स्वं किं स्याति अहं नु स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी
स्थाम् ॥

अर्थ-अपने गुणोंमें परिणामन करते रहने वाले वे प्राणी अपने
लिए अपनी क्रियाको करते हैं भ्रमसे विमोहित होकर
अपने आपको क्यों घात ? मैं तो अपनेमें अपनेलिये
स्वयं सुखी होऊँ ॥

(८)

पुण्यं पापं मृगं दुःखं चेष्टा वाणी च कल्पना ।

विडम्बनाः परात्मन्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-पुण्य पापं मृगं दुःखं चेष्टा वाणी च कल्पनाः विडम्बनाः

पना. मर्वा. विपरः परान् सन्ति अतः परदृष्टिं विगतं स्वे स्व
स्वयं मृगी स्थाम् ॥

अर्थ-पुण्य, पाप, मृग, दुःख, चेष्टा, वचन और कल्पना
विडम्बनाएँ, मन विपत्तिषां परनिमित्तसे (परनिमित्त विन
नहीं होती अतः) होती इसलिये परदृष्टिको छोड़कर
अपनेमें अपनेलिये अपने आप मृगी होऊँ ॥

षष्ठोऽध्यायः

(६)

अथवा विपदा भूयाज्ज्ञानमात्रोऽस्मि ते न मे ।

इतस्तुप्याणि रुप्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अथ-सम्पदा वा विपदा भूयात् अहं ज्ञानमात्रः अस्मि ते मे न स्तः
पुनः कुतः तुप्याणि कुतः रुप्याणि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी
स्याम् ॥

अर्थ-सम्पत्ति अथवा विपत्ति कुछ भी हो मैं तो ज्ञान मात्र हूँ
सम्पत्ति और विपत्ति ये दोनों मेरी नहीं हैं फिर क्यों इस
में तोष करूँ व रोष करूँ ? मैं तो अपनेमें अपनेलिये
अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१०)

अथशो वा यशो भूयाज्ज्ञानमात्रोऽस्मि ते न मे ।

कुतस्तुप्याणि रुप्याणि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्वय-अथशः वा यशः भूयात् अहं ज्ञानमात्रः अस्मि ते मे न स्तः पुनः
कुतः तुप्याणि कुतः रुप्याणि स्वे स्वस्मै स्वयं सुखी स्याम् ॥

अर्थ-अपकीर्ति अथवा कीर्ति कुछ भी हो मैं तो ज्ञान मात्र हूँ
ये दोनों अर्थात् अपयश और यश मेरे नहीं हैं फिर यश
में क्या तोष करूँ अपयशमें क्या रोष करूँ मैं तो अपनेमें
अपनेलिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(१३)

अन्तर्वाद्यं जगन्मयं नश्यत् नष्ट किं हितम् ।
कर्तव्यमितरद्वयं स्यात् स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्य-सर्वं अन्तर्वाद्यं जगत् नश्यत् नष्ट किं हितं अग्नि ज्ञान
इतरत् कर्तव्यं कर्तव्यं अग्नि अन्तर्वाद्यं ज्ञानमयं स्वे स्वस्मै स्वे
सुखी भवाम् ॥

अर्थ-यह सर्व अन्तरङ्ग और वाद्य जगत् विनाशक है या
क्या हित है जानने मात्रकें सिवाय अन्य कर्तव्य व्य
है हमलिये ज्ञानस्वरूप निजमें निजके अर्थ स्वयं सु
होऊँ ॥

(२०)

स्वतन्त्रोऽहं परास्तेषां तन्त्रो योगवियोगयोः ।
कथं दृष्ट्याणि खिन्दानि स्यात् स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥

अन्य-अहं स्वतन्त्रः अग्नि पयः तेषां तन्त्राः सन्ति पुनः तेषां योग-
वियोगयोः कथं दृष्ट्याणि ? कथं खिन्दानि ?... स्वे स्वस्मै स्वयं
सुखी भवाम् ॥

अर्थ-मैं अपने तन्त्र हूँ पर-पदार्थ उन उन ही पर-पदार्थोंके तन्त्र
हैं फिर उनके संयोग और वियोगमें क्यों हर्ष करूँ क्यों
खेद करूँ ? अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ ॥

(२१)

इति ज्ञानमायोऽहं यदात्मन्यगुणानपि ।

नित्यं नृः नृः सोमः स्यात् स्वर्गं ये गुणो मयम् ॥

अहं-इति ज्ञानमात्रः यदात्मि ज्ञानगुणान् अति स्वयं
नित्यं नृः नृः सोमः स्यात् स्वर्गं ये गुणो मयम् ॥

अहं-इति ज्ञानमात्रं ज्ञानमात्रं हो जाता है मयं इति ज्ञानं
नित्यं नृः नृः सोमः स्यात् स्वर्गं ये गुणो मयम् ॥

(२२)

ज्ञानं चेत्याहं चेत्याहं नृः नृः मयम् ।

अहं नृः नृः सोमः स्यात् स्वर्गं ये गुणो मयम् ॥

अहं-इति ज्ञानमात्रं चेत्याहं चेत्याहं नृः नृः मयम् ॥
अहं नृः नृः सोमः स्यात् स्वर्गं ये गुणो मयम् ॥

अहं-इति ज्ञानमात्रं चेत्याहं चेत्याहं नृः नृः मयम् ॥
अहं नृः नृः सोमः स्यात् स्वर्गं ये गुणो मयम् ॥

भिन्नदर्शो भवेद्भिन्नः
 सिन्नयुतितनोरास्था
 भिन्ने स्वस्य धियास्तस्मा
 भुक्तवा त्यजानि भावोऽयं
 भूतो भवेपुःसम्पन्नो
 भोगमोक्षेपिणोऽनेके
 भोगश्चेमण दुखानि
 भोगयुक्ता मुहुस्त्यक्ता
 भोगे योगे न शान्ति

म

मनो मे न स्वभावोऽहं
 मनोवाक्कायवृत्तीनां
 मनोवाक्कायचेष्टेच्छा
 मनोवाक्कायवृत्तिश्चे
 मनोवाक्कायवृत्तीनां
 मनोवाक्कायिकीयाव
 नयि मां गम्यं भया मे मत्
 स्वभ्रान्ति क्लेशो
 मोहे
 साम्यं

२ २४
 ३ ३०
 ३ २०
 ३ ३१
 ५ २१
 ५ ५२
 २ ३०
 १ ३३
 ६ ३७
 ६ ४५

पेतां योगो वियोगी हि
 पे मृवन्तिच निन्दन्ति
 पर्ये मम मम्वंधो
 शैतनं जगया ध्याज्जं

४

द्वेपौ हि मंगारः
 गादि पदियेषावत्
 गादियर्षतः प्रत्यक्
 गद्रेपोदयस्तस्मिन्
 गद्रेषपरित्यागे
 द्वेपौ हि संमागे
 गमायः स्वयं स्वा
 गागा हीन्धनं दृश्यं
 रागिणो जन्मने मृत्युं
 रागो योगेऽपि हेयम्
 राऽये क्लेशं दृश्यं यत्नो

ल

लाभोऽपि भूतिकीर्त्तनां
 लोकां कृतवासा कोऽपीमं
 लोके द्रव्याण्यनेकानि
 लोके रिक्तं न तत्स्थानं

अध्याय

श्लोक नं०

३

४

६

१४

३

२३

३

३

३

६

१

६०

२

४६

५

४१

४

३१

६

१८

१

१

७

४२

५

३६

४

३२

२

३०

४

२३

३

४४

३

३

अध्याय	श्लोक
५	३
१	
५	४५
५	४८
७	१७
५	१४
५	२६
६	४१
६	४८
४	१८
१	७
५	३०
१	५०
१	५१
१	४८
६	४२
६	७
७	३५
२	२८
४	८

स्वयंयत्कर्तुमायाति

स्वरागवेदना विद्वः

स्वलक्ष्यता महदुर्गः

स्वलक्ष्यता मुधामिन्धु

स्वबाह्वे न दितं किञ्चित्

स्वस्थं स्वं परयतो मे न

स्वस्थस्य सहजानन्दो

स्वज्ञः शत्रुः कुतो मित्रः

स्वाख्यातीच्छाजनिन्दाहि

स्वात्मचिन्तापि चिन्तैव

स्वातन्त्र्यं वस्तुनो रूपं

स्वालक्ष्योऽन्योपकारी चेत

स्वैकत्वं मंगलं लोके

स्वैकत्वमोषधं सर्व

स्वैकत्वस्य रुचिस्तस्मात्

स्वैकत्वस्याप्त्युपायोमे

स्वैकत्वेऽनुगता सर्वे

पानेन जायन्ते

नेति

६५५

मदृष्टिज्ञानचाग्निर्यः	१	-	४६
मर्षचिन्तारुथान्नेष्टा	७		२३
मर्षगारमिर्दं कार्यं	७		२०
मर्षेऽनंतगुणोपेताः	६		३०
मर्षेऽर्थाः मर्षथा मिश्राः	६		१
मर्षेणमाः ममे मर्षी	६		४६
महत्तानन्दमादः क्व	१		२६
मंशितं कर्म चेद्वस्तु	२		४२
मंपद्विषयु को भेदः	६		२८
मंपदा विपदा भूयाज	६		६
मंयस्याद्याणि मृक्नत्रा च	१		४३
मंययेन नरोधीरं	५		३६
मंविच्यम्या मशिषातः	५		२६
मंमाग्जो हि पर्यायः	३		१०
मंमाग्वाडिमूढेना	६		१७
माम्यं विशुद्धविज्ञानं	६		४३
मार देहिषु मर्षेण	१		४५
साक्षादीशोऽपि दिश्याच्चेत्	५		७
गुणं दुःखं स्तुति निंदां	६		२५
गुणं नैवारयमेवास्ति	४		४४

स्वयंयत्कर्तुमायाति	अध्याय ५
स्वरागवेदना विद्वः	१
स्वलक्ष्यता महदुर्गः	५
स्वलक्ष्यता सुधामिन्धु	७
स्वबाह्ये न द्वितं किञ्चित्	७
स्वस्थं स्वं पश्यतो मे न	५
स्वस्थस्य सहजानन्दो	५
स्वजः शत्रुः कुतो मित्रः	६
स्वारूपातीच्छाजनिन्दाहि	६
स्वात्मचिन्तापि चिन्तैव	४
स्वातन्त्र्यं वस्तुनो रूपं	१
स्वालक्ष्योऽन्योपकारी चेत्	५
स्वैकत्वं भंगलं लोके	१
स्वैकत्वमोषधं सर्वं	१
स्वैकत्वस्य रुचिस्तस्मात्	१
स्वैकत्वस्याप्त्युपायोमे	६
स्वैकत्वेऽनुगता सर्वे	६
स्वोपादानेन जायन्ते	७
संकल्पेऽजनि संसागे	
सत्त्वस्य सदाकुन्य	

॥ ॐ नत्मतपरमात्मने नमः ॥

पूज्य श्री १०५ बुल्लरु मनोहरवर्णिमहजानंदस्यामिविरचित

तत्त्वसूत्रम्

(अष्टाध्यायी)

प्रथमोऽध्यायः

ॐ १। तत् २। सत् ३। एकम् ४। नित्यम् ५। सप्रतिपक्षम्
६। अप्रतिपक्षम् ७। अतत् ८। असत् ९। अनेकम् १०।
क्षणिकम् ११। अविभक्तम् १२। विभक्तम् १३। अखण्डम् १४।
मांशम् १५। स्वरिणतम् १६। अस्वापरिणतम् १७। स्वभावयत्
१८। अस्याभाव्यम् १९। ज्ञानमात्रम् २०।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

तद्वत् १। चित् २। व्रत्त ३। जीवः ४। आत्मा ५।
ज्ञाता ६। द्रष्टा ७। अमूर्तः ८। कर्ता ९। भोक्ता १०। अकर्ता
११। अभोक्ता १२। विभुः १३। अद्वयाती १४। मन्त्रा १५।
अक्षणा १६। शुद्धः १७। अशुद्धः १८। शक्तिमयम् १९।
ज्ञानमात्रम् २०।

द्वितीयं गृहस्थों के कर्तव्य

- १ ॐ नमः सिद्धेभ्यः, शुद्धिचिद्रूपोऽहं, ॐ आदि मन्त्रोंका प्रातः सायं जाप करें ।
- २ प्रति दिन सबसे पहिले अथान्तज्ञानमय परमात्माकी भक्ति व पूजा करें ।
- ३ नियमित मननपूर्वक स्वाध्याय करें व समझते योग्य स्थल नोट करलें ।
- ४ दशलक्ष्मण पर्व अष्टाह्निका प्रत्येक अष्टमी चतुर्दशीको पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करें ।
- ५ पर्वतिरक्त दिनोंमें भी अधिकसे अधिक ब्रह्मचर्य पालन करें ।
- ६ स्त्रीके गर्भ रहनेके बाद दंपति १-३ वर्षका वच्चा होनेतक ब्रह्मचार्यसे रहे ।
- ७ सात व्यसनोका पूर्ण रूपसे त्याग रखे ।
- ८ जने हुये जलसे बना हुआ शुद्ध भोजन करें ।
- ९ (को तैयार किये हुए भोजनका त्याग

भोजन आदि अपने संयमका लक्ष्य

होओ, सहजपरिणत होओ, जगन् धोखा है, सर्व मि
है, तू तो अकेला ही है ।

+ ॐ +

६१६. आत्माको सहजपरिणति ही भगवती है जिसके प्रसाद
में आत्माको अनन्त विजय होती है । हे भगवति
प्रसन्न होओ- प्रकट होओ ।

ॐ नमो भगवते सच्चिदानंदाय

